जैनधर्म की कहानियाँ

भाग–१२

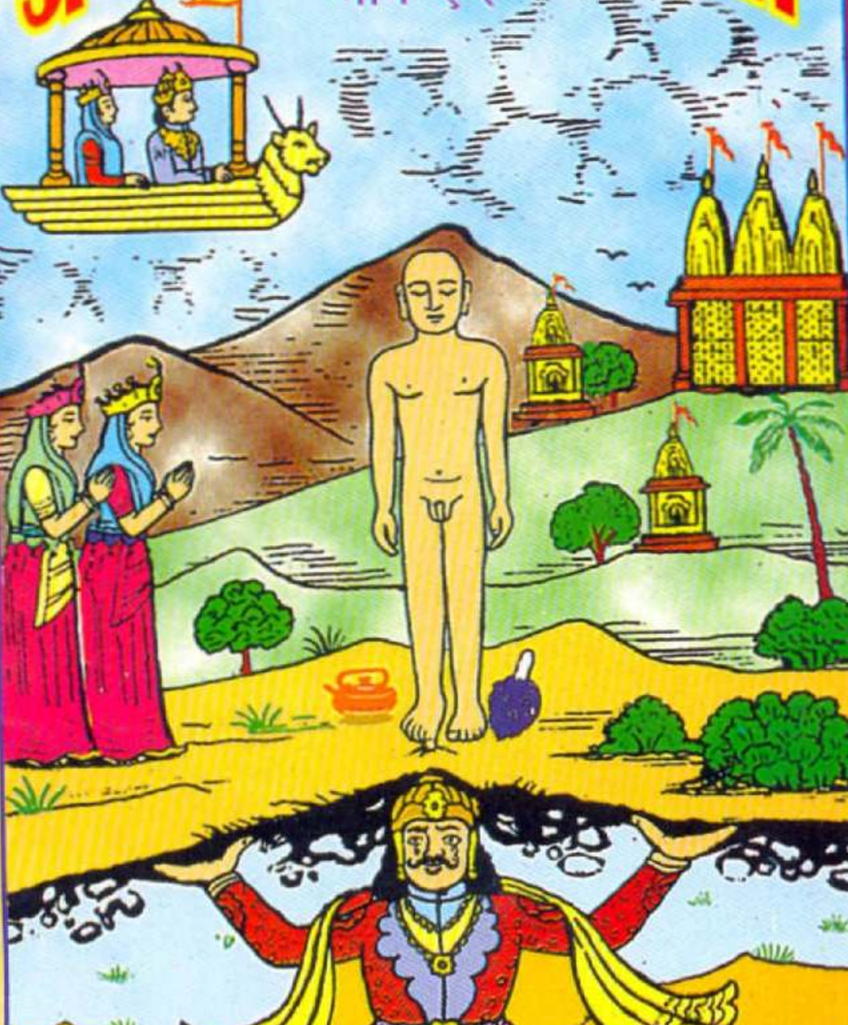

: प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़

कहान स्मृति प्रकाशन, सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला का १८वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग १२)

लेखक :

ब्र० हरिभाई, सौनगढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़-४९१८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़-३६४२५०(सौराष्ट्र)

अबतक - ५,००० प्रतियाँ
द्वितीय आवृत्ति - ५,००० प्रतियाँ
१५ नवम्बर, २००१ (महावीर निर्वाण महोत्सव)

न्यौछावर – सात रुपये मात्र

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति स्थान –

- **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा – खैरागढ़**
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
  खैरागढ़ – ४९१८८१, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५ (राज.)

- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़ - ३६४२५०
  जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –
जैन कम्प्यूटर्स,
श्री टोडरमल स्मारक भवन, मंगलधाम,
ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५
फोन : ०१४१-७००७५१
फैक्स : ०१४१-५१९२६५

卐 अनुक्रमणिका 卐

क्षमामूर्ति बालि मुनिराज	11
महारानी चेलना	35
भाग ११ में प्रकाशित पहेलियों व प्रश्नों के उत्तर	79

हाय ! मैं मर गया.......

जिसप्रकार स्वप्न में मरनेवाला, जागने पर जीवित ही रहता है, उसीप्रकार स्वप्न में हुआ मरण का दु:ख भी जागृतदशा में नहीं रहता।

एक मनुष्य गहरी नींद में सो रहा था, उसको स्वप्न आया कि 'मैं मर गया हूँ' –इसप्रकार अपना मरण जानकर वह जीव बहुत दु:खी और भयभीत हुआ और जोर-जोर से चिल्लाने लगा– हाय! मैं मर गया....। तब किसी सज्जन ने उसे जगाया और कहा – "अरे भाई ! तू जीवित है, मरा नहीं।"

जागते ही उसने देखा –'अरे, मैं तो जिंदा ही हूँ, मरा नहीं। स्वप्न में मैंने अपने को मरा हुआ माना, इसलिए मैं दु:खी हुआ, लेकिन मैं वास्तव में जीवित हूँ।" – इसप्रकार अपने को जीवित जानकर वह आनन्दित हुआ। उसे मृत्युसम्बन्धी जो दु:ख था, वह दूर हो गया। अरे, यदि वह मर गया होता तो 'मैं मर गया हूँ – ऐसा कौन जानता ? ऐसा जाननेवाला तो जीवित ही है।

इसप्रकार मोहनिद्रा में सोनेवाला जीव, देहादिक के संयोग-वियोग में स्वप्न की भाँति ऐसा मानता है कि 'मैं जीवित हूँ, मैं मरा। मैं मनुष्य हो गया, मैं तिर्यंच हो गया' –ऐसी मान्यता से वह बहुत दु:खी होता है। जब ज्ञानियों ने उसे जगाया/समझाया और जड़ चेतन की भिन्नता बतायी। तब जागते/समझते ही उसे यह भान हुआ कि "**अरे ! मैं तो अविनाशी चैतन्य हूँ और यह शरीर तो जड़ है। मैं इस शरीर जैसा नहीं हूँ, शरीर के संयोग-वियोग से मेरा जन्म-मरण नहीं होता।**"

ऐसा भान होते ही उसका दु:ख दूर हुआ और वह आनन्दित हुआ कि– "**वाह ! जन्म-मरण मेरे में नहीं होता, देह के वियोग से मेरा मरण नहीं होता, मैं तो सदा जीवन्त चैतन्यमय हूँ। मैं मनुष्य या मैं तिर्यंच नहीं हुआ। मैं तो शरीर से भिन्न चैतन्य ही हूँ। यदि मैं शरीर से भिन्न न होता तो शरीर छूटते ही मैं भी समाप्त हो जाता? मैं तो जाननहार स्वरूप से सदा जीवन्त हूँ।**"

1

क्षमामूर्ति बालि मुनिराज

सद्गुरु का उपदेश सुन, जगा धर्म का प्रेम।
तत्क्षण बाली ने लिया, सविनय सादर नेम।।
यह सुनकर लंकेश तो, हुए क्रोध आधीन।
क्षमामूर्ति बाली हुए, तभी स्वात्म में लीन।।

इस भूतल पर सर्वत्र यह विदित है कि मनुष्यादि प्राणियों को उपजाऊ भूमि ही सदा जीवनोपयोगी खाद्य पदार्थ प्रदान करती है। सजलमेघ ही सदा एवं सर्वत्र स्वच्छ, शीतल जल प्रदान करते हैं। इसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में अनेक खंड हैं, उनमें से जिस खंड के प्राणी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ को साध मुक्ति सुन्दरी के वल्लभ होते हैं, उसी खंड को उनकी इस आर्यवृत्ति के कारण आर्यखंड नाम से जाना जाता है। इसी आर्यखंड की पुष्पवती किष्किंधापुरी नामक नगरी में विद्याधरों के स्वामी कपिध्वजवंशोद्भव अर्थात् वानरवंशी महाराजा बालि राज्य करते थे।

एकदिन सदा स्वरूपानंद विहारी, निजानंदभोगी, सिद्ध सादृश्य पूज्य मुनिवरों का संघ सहित आगमन इसी किष्किंधापुरी के वन में हुआ, जिन्हें देख वन के मयूर आनंद से नाचने लगे। कोयलें अपनी मधुर ध्वनि से कुहुकने लगीं, मानो सुरीले स्वर में गुरु महिमा के गीत गा रहीं हों। पक्षीगण प्रमोद के साथ गुरु समूह के चारों ओर उड़ने लगे,

मानो वे श्री गुरुओं की प्रदक्षिणा दे रहे हों। वनचर प्राणी गुरुगंभीर मुद्रा को निरखकर अपने आगे के दोनों पैर रूपी हाथों को जोड़कर मस्तक नवाकर नमस्कार करके गुरु पदपंकजों के समीप बैठ गये। सदा वन में जीवन-यापन करने वाले मनुष्यों ने तो मानो अनुपम निधि ही प्राप्त कर ली हो। वन में मुनिराज को देखकर वनपाल का हृदय पुलकित हो गया और वह दौड़ता हुआ राजदरबार में पहुँचा और वनपाल हाथ जोड़कर राजा साहब को मंगल सन्देश देता हुआ बोला–

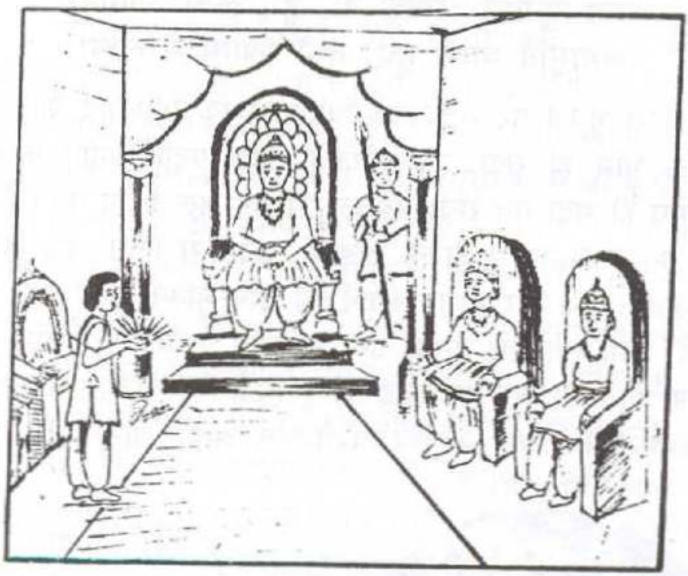

हे राजन्! आज हमारे महाभाग्य से अपने ही वन में संघ सहित मुनिराज का मंगल आगमन हुआ है।

महाराजा बालि ने तत्काल हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर गुरुवर्यों को परोक्ष नमस्कार किया, पश्चात् वनपाल को भेंट स्वरूप बहुत-सी धनराशि प्रदान की। उसे पाकर वनपाल अपने स्थान को लौट आया।

महाराजा बालि ने मंत्री को बुलाकर कहा– आज नगर में मुनिवरों के दर्शनार्थ चलने की भेरी बजवा दीजिए।

महाराज की आज्ञानुसार मंत्री ने तत्काल नगर में भेरी बजवा दी– "हे नगरवासीजनो! आज हम सभी को मुनिवरों के दर्शन हेतु राजा साहब के साथ वन को चलना है, अत: शीघ्र ही राजदरबार में एकत्रित होइए।" भेरी का मंगल नाद सुन प्रजाजन शीघ्र ही द्रव्य-भाव शुद्धि के साथ अपने-अपने हाथों में अर्घ्य की थाली लेकर राजदरबार में एकत्रित हुए।

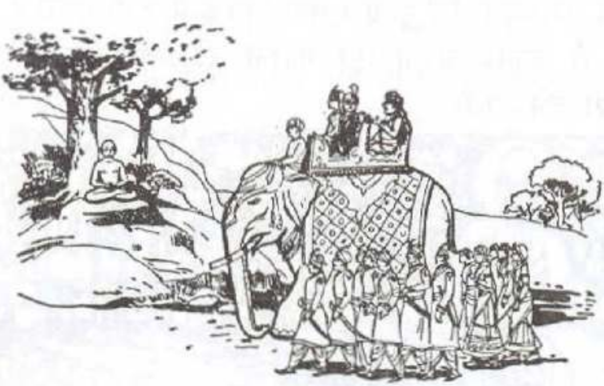

राजा बालि गजारूढ़ हो अपने साधर्मियों के साथ मंगल भावना भाते हुए वन में चल रहे हैं। राजा साहब देखते हैं कि आज तो जंगल की छटा ही कुछ निराली दिख रही है, मानो गुरु हृदय की परम शांति का प्रभाव वन के पेड़-पौधों पर भी पड़ गया हो। इन सबके अन्दर भी तो शाश्वत परमात्मा विराजमान है और आत्मा का स्वभाव सुख-शांतिमय है। ये सभी सदा दु:ख से डरते हैं और सुख को चाहते हैं, भले ही इनमें ज्ञान की हीनता से यह ज्ञात न हो कि मेरे परमहितकारी गुरुवर पधारे हैं, परन्तु अव्यक्त रूप से उनकी परिणति में कुछ कषाय की मंदताजन्य शांति का संचार अवश्य हो रहा है। ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है।

प्रत्येक आत्मा को भगवान स्वरूप देखते हुए, विचारते हुए राजा साहब साधर्मियों सहित पूज्य गुरुवर चरणारविंदों के समीप जा पहुँचे। सभी ने पूज्य गुरुवर्यों को हाथ जोड़कर साष्टांग नमस्कार किया,

तीन प्रदक्षिणा दीं, फिर गुरुचरणों में सभी हाथ जोड़कर उनकी शांत-प्रशांत वैरागी मुद्रा को देखते हुए टकटकी लगाये हुए बैठ गये। अहा हा ! ज्ञान-वैराग्यमयी परमशांत मुद्रा, चैतन्य का अन्तर वैभव बाहर जड़ पुद्गल पर छा गया था। मुनिसंघ सिद्धों से बातें करते हुए ध्यानस्थ अडोल-अकंप विराजमान था।

धर्मामृत के पिपासु चातक तो बैठे ही हैं । कुछ समय के बाद मुनिराजों का ध्यान भंग हुआ । महा-विवेक के धनी गुरुराज ने प्रजाजनों के नेत्रों से उनकी पात्रता एवं भावना को पढ़ लिया, अत: वे उन्हें धर्मोपदेश देने लगे।

हे भव्यो! धर्मपिता श्री तीर्थंकर परमदेव ने धर्म का मूल सम्यग्दर्शन कहा है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के यथार्थ श्रद्धान को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिन्होंने निजात्मा के आश्रय से रत्नत्रय को प्राप्त कर अर्थात् मुनिधर्म साधन द्वारा अनंत चतुष्टय प्राप्त कर जो वीतरागी, सर्वज्ञ तथा हितापदेशी हो गये हैं वे ही हमारे सच्चे आप्त/देव हैं। वे ही अपने केवलज्ञान के द्वारा जाति अपेक्षा छह और संख्या अपेक्षा अनंतानंत द्रव्यों को, सात तत्त्वों को, नव पदार्थों को, ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध को, कर्त्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्य आदि सम्बंधों को अर्थात् तीन लोक और

तीन काल के चराचर पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष एक ही समय में जानते हैं एवं अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दर्शाते हैं, अतः प्रभु की वाणी ही जिनवाणी या सुशास्त्र कहलाते हैं। ऐसे देव क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषों से रहित और सम्यक्त्वादि अनंत गुणों से सहित हैं। यही कारण है कि प्रभु की वाणी परिपूर्ण शुद्ध, निर्दोष एवं वीतरागता की पोषक होती है । उस वाणी के अनुसार जिनका जीवन है, जो परम दिगम्बर मुद्राधारी हैं, ज्ञान-ध्यानमयी जिनका स्वरूप है, जो २४ प्रकार के परिग्रह से रहित हैं, वे ही हमारे सच्चे गुरु हैं। भव दुःख से भयभीत, अपने हित का इच्छुक भव्यात्मा ऐसे देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करता है।

इनके अतिरिक्त जो मोहमुग्ध देव हैं, संसार पोषक अनागम हैं और रागी-द्वेषी एवं परिग्रहवंत गुरु हैं, उनकी वंदना कभी नहीं करना चाहिए; क्योंकि वीतराग-धर्म गुणों का उपासक है कोई व्यक्ति या भेष का नहीं, इसलिए श्री पंचपरमेष्ठियों की वीतरागीवाणी और वीतरागीधर्म के अलावा और किसी को नमन नहीं करना चाहिए, क्योंकि पंचपरमेष्ठी और उनकी वाणी के अतिरिक्त सभी धर्म के लुटेरे हैं और मिथ्यात्व के पोषक हैं, अनन्त दुःखों के कारण हैं।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, सात तत्त्व, हितकारी-अहितकारी भाव, स्व-पर इत्यादि मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्व हैं, उनकी विपरीत मान्यता को मिथ्यात्व कहते हैं। इस विपरीत अभिप्राय के वश होकर यह प्राणी अनंत काल से चौरासी लाख योनियों में भ्रमता हुआ अनंत दुःख उठाता आ रहा है। निगोदादि पर्यायों से निकलकर महादुर्लभ यह त्रस पर्याय को प्राप्त करता है, उसमें भी संज्ञी पंचेन्द्रिय, मनुष्यपर्याय, श्रावककुल, सत्यधर्म का पाना अतिदुर्लभ है, यदि ये भी मिल गये तो सत्संगति और सत्यधर्म को ग्रहण करने की बुद्धि का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। सत्यधर्म को अवधारण करने के लिये कषायों की मंदता होना महादुर्लभ है। हे भव्योत्तम! इतनी दुर्लभता तो तू महाभाग्य से पार कर चुका है।

इसलिए सच्चे देव-शास्त्र-गुरुओं के उपदेश से तू अब मिथ्या मान्यताओं को तजकर वस्तु स्वरूप को ग्रहण कर, यह धर्म ही संसार सागर से पार उतारने वाला सच्चा यान/जहाज है।

श्रीगुरु का उपदेशामृत पानकर महाराजा बालि का मन-मयूर प्रसन्न हो गया। अहो, इस परम हितकारी शिक्षा को मैं आज ही अंगीकार करूँगा। अत: बालि अपनी भावनाओं को साकार करने हेतु तत्काल ही श्रीगुरुचरणों में अंजुली जोड़कर नमस्कार करते हुए बोले– हे प्रभो! मुझे यह हितकारी व्रत प्रदान कर अनुगृहीत कीजिये।

हे भवभयभीरू नृपेश! तुम्हारी भली होनहार है अत: आज तुम पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी, प्रजाजनों की एवं आत्मा की साक्षीपूर्वक यह प्रतिज्ञा अंगीकार करो कि मैं पंचपरमेष्ठी भगवंतों को, जिनवाणी माता को और वीतरागी जिनधर्म के अलावा किसी को भी नमन नहीं करूँगा। राजा हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए बोले– प्रभो ! आपके द्वारा प्रदत्त हितकारी व्रत को मैं यम रूप से अंगीकार करता हूँ। पश्चात् गुरु-वंदना एवं स्तुति करके राजा अपने साधर्मियों व नगरवासियों सहित

अपने गृह को लौट आये। कुछ दिनों के बाद पूज्य गुरुवर आहार-चर्या हेतु नगर में पधारे और पड़गाहन हेतु महाराजा बालि एवं नगर वासी अपने-अपने द्वार पर खड़े थे, उनका भाग्य चमक उठा और उन्हें महापात्र गुरुवरों के आहार दान का लाभ प्राप्त हो गया। नवधा भक्तिपूर्वक मुक्ति साधक श्रीगुरुओं को दाताओं ने भक्तिपूर्वक आहार दान देकर अपूर्व पुण्य का संचय किया। पश्चात् गुरु महिमा

गाते हुए उत्सव मनाते हुए गुरुवरों के साथ वन-जंगल तक गये। पश्चात् सभी अपने-अपने घर को आकर अपने नित्य-नैमित्तिक कार्यों को करते हैं, परन्तु उनके हृदय में तो गुरुराज बस रहे हैं, यही कारण है कि उन्हें चलते-फिरते, खाते-पीते अर्थात् प्रत्येक कार्य में गुरु ही गुरु दिख रहे हैं।

इधर महाराजा बालि की प्रतिज्ञा के समाचार जब लंकापुरी नरेश रावण ने सुने तब उसे ऐसा लगा कि मुझे नमस्कार नहीं करने की इच्छा से ही बालि ने यह प्रतिज्ञा ली है, अन्यथा और कोई कारण नहीं है। मैं अभी इसको प्रतिज्ञा लेने का मजा चखाता हूँ।

लंकेश ने शीघ्र ही एक शास्त्रज्ञ विद्वान दूत को बुलवाया और आज्ञा दी— हे कुशाग्रमते! आप शीघ्र ही किष्किंधापुरी जाकर बालि नरेश को सूचित करो कि आप अपनी बहन श्रीमाला हमें देकर एवं नमस्कार कर सुख से अपना राज्य करें।

विद्वान दूत राजाज्ञा शिरोधार्य कर शीघ्र ही किष्किंधापुरी पहुँचा, उसने राजा बालि के मंत्री से कहा— आप अपने राजा साहब को संदेश भेज दीजिये कि लंका नरेश का दूत आप से मिलना चाहता है।

मंत्री ने राजा के पास जाकर निवेदन किया— हे राजन्! लंकेश का दूत आपसे मिलने के लिये आया है, आपकी आज्ञा चाहता है।

राजा साहब ने दूत को ले आने की स्वीकृति दे दी।

राजाज्ञा पाकर मंत्री शीघ्र ही दूत को महाराजा बालि के समक्ष ले आये। राजा को नमस्कार करते हुए दूत ने लंका नरेश का सन्देश कहा— हे राजन् ! जगत विजयी राजा दशानन का कहना है कि आप और हमारे बीच परम्परा से स्नेह का व्यवहार चला आ रहा है, उसका निर्वाह आप को भी करना चाहिए तथा आप के पिताजी को हमने सूर्य के शत्रु अत्यंत प्रचंड राजा को जीतकर उसका राज्य आप को दिया था, अतः उस उपकार का स्मरण करके आप अपनी बहन श्रीमाला लंकाधिपति को देकर उन्हें नमस्कार करके आप सुखपूर्वक राज्य करिये।

हे राजदूत ! राजा दशानन का उपकार मेरे हृदय में अच्छी तरह से प्रतिष्ठित है, उसके फल-स्वरूप मैं अपनी बहन श्रीमाला को ससम्मान राजा को समर्पित करने को तैयार हूँ, मगर आपके राजा को नमस्कार नहीं करूँगा।

हे राजन् ! नमस्कार न करने से आप का बहुत अपकार होगा। उपकारी का उपकार न मानने वाला जगत में कृतघ्नी कहलाता है। नमस्कार न करने का क्या कारण है राजन् ?

हे कुशलबुद्धे ! इतना तो आप जानते ही होंगे कि जिनधर्म में कोई पद पूज्य नहीं होता, कोई व्यक्ति या जाति पूज्य नहीं होती, जिनधर्म तो गुणों तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपासक होता है और आपके राजन् अविरति हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं पंच परमेष्ठी के अलावा और किसी को नमस्कार नहीं करता।

हे राजन् ! लोक व्यवहार में धर्म नहीं देखा जाता है। व्यर्थ में ही कषाय बढ़ाने से क्या फायदा है ?

हे दूत ! जो होना होगा वह होगा, मैं प्रतिज्ञा से बढ़कर लोक व्यवहार को नहीं मानता। आप अपने स्थान को पधारिये।

विद्वानदूत शीघ्र ही किष्किंधापुरी से प्रस्थान करके कुछ ही दिनों में लंकापुरी पहुँच गया। राजा साहब के पास पहुँचकर निवेदन किया— हे महाराज ! आपके सब उपकारों का उपकार मानते हुए बालि महाराजा आपको अपनी बहन तो सहर्ष देने को तैयार हैं, परंतु नमस्कार करने को तैयार नहीं हैं।

हे दूत ! नमस्कार न करने का क्या कारण है?

हे राजन् ! महाराजा बालि ने श्रीगुरु के पास पंच परमेष्ठी के अलावा किसी और को नमस्कार न करने की प्रतिज्ञा अंगीकार की है। धार्मिक प्रतिज्ञा के सामने कुछ भी कहना मुझे उचित नहीं लगा।

बस फिर क्या था, लंकेश तो भुजंग के समान कुपित हो उठे, तब रावण के मंत्रिगण एकदम गंभीर हो गये। कुछ देर विचार करने के बाद मंत्रिगणों ने राजा साहब से निवेदन किया– हे प्राणाधार! आप भी धार्मिक व्यक्ति हो, पूजा-पाठ, दया-दान, व्रत आदि करते हो, प्रतिदिन जिनवाणी का स्वाध्याय करते हो, अत: इतना तो आप भी जानते हो कि श्रीगुरुओं से ली हुई प्रतिज्ञायें चाहे वह छोटीं हों या बड़ीं उसका जीवन पर्यंत निर्दोष रूप से पालन करना चाहिए। प्राणों की कीमत पर भी व्रतभंग नहीं करना चाहिए। किसी की या अपनी प्रतिज्ञा को भंग करने में महापाप लगता है।

अत: हम लोगों की सलाह है कि बालि नरेश आपको अपनी बहन देने को तो तैयार ही हैं और जो अपनी बहन देगा तो आपका आदर सत्कार/साधुवाद तो करेगा ही करेगा, मात्र मस्तक झुकाना ही नमस्कार नहीं है। अपने हृदय में किसी को स्थान देना, आदर देना भी तो नमस्कार ही है। और बालि नरेश के हृदय में आपके प्रति आदर तो है ही। अत: आप हम लोगों की बात पर गंभीरता से विचार कीजिये, एकदम क्रोध में आ जाना राज्य के हित में नहीं होता राजन्।

भैंस के सामने बीन बजाना, मूर्ख को शिक्षा देना तथा सर्प को दूध पिलाना जैसे व्यर्थ है। वैसे ही मंत्रियों की योग्य सलाह भी लंकेश पर कुछ असर नहीं कर सकी, आखिर तो क्रोध के पास विवेक रहा ही कब है जो कुछ असर हो, वह तो सदा अंधा ही होता है, सदा असुर बनकर भभकना उसकी प्रकृति ही है। जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। अंततोगत्वा रावण ने साम, दाम, दंड और भेद सभी प्रकार से किष्किंधापुरी को घेर लिया।

किष्किंधापुरी के घिर जाने के समाचार जब राजा बालि ने सुने तब वे भी युद्ध के लिये तैयार हो गये। तब बालि राजा के मंत्रियों ने बहुत समझाया। महाराज! आपके वे उपकारी हैं। आपके पास इतनी सेना भी नहीं है। इतने अस्त्र-शस्त्र भी नहीं हैं। रावण तो चार अक्छोहणी सेना का अधिपति है, उसके सामने अपनी सेना क्या है? उपकारियों का अपकार करने वाला राजा लोक में कृतघ्नी गिनाया जाता है, इसलिए हे राजन्! हम लोगों की बात पर आप गंभीरता से विचार कीजिए।

कितना भी विवेकी राजा क्यों न हो, परन्तु जब कोई अन्य राजा उसे युद्धस्थल पर ललकार रहा हो तब सामने वाला शांत नहीं बैठ सकता, यह उसकी भूमिकागत कषायों का प्रताप होता है। अत: महाराजा बालि ने भी मंत्रियों की एक भी न सुनी और अपनी सम्पूर्ण सेना सहित दशानन का सामना करने को युद्धस्थल में आ गया।

दोनों ओर की सेना ज्यों ही युद्ध के लिये तैयार हुई कि दोनों ओर के मंत्रियों ने उन्हें विराम का संकेत किया और विचार किया कि लंकेश प्रतिवासुदेव हैं और महाराजा बालि चरम शरीरी हैं, अत: मृत्यु तो दोनों की असंभव है, फिर व्यर्थ में सैन्य शक्ति का विनाश क्यों हो? अनेक मातायें-बहनें विधवा क्यों हों? निर्दोष बालक अनाथ क्यों हों? उन्हें रोटियों के टुकड़ों की भीख क्यों मंगवायें? श्रेष्ठ तो यही है कि दोनों राजा ही आपस में युद्ध करके फैसला कर लें।

तब दोनों के मंत्रियों ने अपने-अपने राजाओं से निवेदन किया– हे राजन्! आप दोनों ही मृत्युंजय हो, तब आप दोनों ही युद्ध का कुछ हल निकाल लें तो उचित होगा, सेना का व्यर्थ में संहार क्यों हो? यदि आप चाहें तो सैनिक युद्ध को टालकर दोनों ही राज्यों की सैन्यशक्ति तथा उस पर होने वाले कोष की हानि से बचा जा सकता है।

मंत्रियों की बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह दोनों ही राजाओं को उचित

प्रतीत हुई, अत: दोनों ही राजा युद्धस्थल में उतर पड़े। कुछ ही समयों में दोनों के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया।

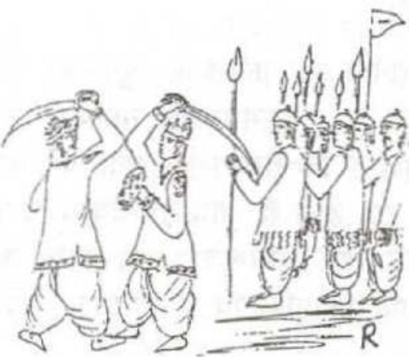

सम्पूर्ण सेना में कुछ विचित्र प्रकार का उद्वेग हो उठा, वे कुछ कर भी नहीं सकते थे और चुपचाप बैठा भी नहीं जा रहा था।

होनहार के अनुसार ही दोनों के अन्दर विचारों ने जन्म लिया। मोक्षगामी महाराजा बालि का तो वैराग्य वृद्धिगत होने लगा और नरकगामी रावण का प्रतिसमय क्रोधासुर वृद्धिगत होने लगा।

आ हा हा! महाराजा बालि तो चरमशरीरी थे ही, अत: उनके अतुल बल का तो कहना ही क्या था, दशानन को बन्दी बनाना उनके लिये चुटकियों का खेल था।

अरे अर्द्धचक्री, चार अक्छोहणी सेना का अधिपति क्षणमात्र में बन्दी बना लिया गया। कोई शरणदाता नहीं होने पर भी अज्ञानी जीव परद्रव्य को ही अपना शरणदाता मानकर दु:ख के समुद्र में जा गिरता है। इस लोक में जहाँ-तहाँ जो हार नजर आती है, वह सब संसार शिरोमणि मिथ्यात्व बादशाह एवं उसकी सेना कषाय का ही प्रताप है।

धन-संपत्ति, अस्त्र-शस्त्र, हाथी-घोड़े, रथ-प्यादे एवं सेना की हीनाधिकता हार-जीत का कारण नहीं है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है।

निकट भव्यजीव के लिए युद्ध के अथवा युद्ध में विजय के नगाड़े संसार-देह-भोगों से विरक्ति/वैराग्य का कारण बन जाते हैं। स्वभाव अक्षयनिधि से भरपूर शाश्वत पवित्र तत्त्व है और जड़ सम्पदा क्षणभंगुर एवं अशुचि है।

जिनागम में पार्श्वनाथ और कमठ के, सुकमाल और श्यालनी के, सुकौशल और सिंहनी के, गजकुमार और सोमिल सेठ के इत्यादि अनेक उदाहरणों से प्रसिद्ध है कि वैराग्य की सदा जीत होती है और मिथ्यात्व-कषाय की सदा हार होती है, मोह-राग-द्वेष के वशीभूत होकर चक्रवर्ती भी नरक में गये और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करने वाले सिंह और हाथी भी मुक्तिपथ में विचरण करके मुक्ति को प्राप्त हुए।

बन्दी बने रावण को अन्दर ही अन्दर कषाय प्रज्वलित होती जा रही है, उसके हृदय को वैरागी बालि महाराज ने पढ़ लिया था, अत: परम करुणावंत महाराजा बालि ने रावण को बंधन मुक्त करते हुए क्षमा किया और अपने भाई सुग्रीव का राज्य तिलक करके उसे रावणाधीन करके स्वयं ने वन की ओर प्रस्थान किया; क्यों उन्हें तो अब चैतन्य की परमशांति की ललक जाग उठी है, अपने अतीन्द्रिय आनन्द धारा की गटागट घूँटें पीने की रुचि लगी है। अब राज्य का राग ही अस्त हो गया है तो राज्य करे कौन? वैरागी चरमशरीरिओं का निर्णय अफरगामी होता है, जो कभी फिरता नहीं है।

न्याय नीतिवंत, धर्मज्ञ राजा के राज्य में प्रजा सदा सुखी रहती थी, ऐसे राजा का वियोग, अरे रे....... हाहाकार मच गया, प्रजा के लिए तो मानो उनका वियोग असहनीय ही हो गया हो। अत: प्रजा अपने प्राणनाथ के पीछे-पीछे दौड़ी जा रही है, कोई उनके चरणों को पकड़ कर विलाप करता है, तो कोई उन्हें जिनेश्वरी दीक्षा लेने से इंकार करता है। हे राजन् ! हम आपकी साधना में अंतराय नहीं डालना चाहते; परन्तु इतना निवेदन अवश्य है कि आप अपनी साधना महल के उद्यान में रहकर कीजिए, जिससे हम सभी को भी आराधना की

प्रेरणा मिलती रहेगी, हमारे हित में आप उपकारी बने रहें —ऐसी हमारी भावना है। आपके बिना हम प्राण रहित हो जायेंगे। हे राजन्! हमारी इतनी-सी विनती पर ध्यान दीजिये।

मुक्ति-सुन्दरी के अभिलाषी को रोकने में भला कौन समर्थ हो सकता है? निज ज्ञायक प्रभु के आश्रय से उदित हुए वैराग्य को कोई प्रतिबंधित नहीं कर सकता। चरमशरीरियों का पुरुषार्थ अप्रतिहत भाव से चलता है, जो शाश्वत आनंद को प्राप्त करके ही रहता है। शीघ्रता से बढ़ते हुए महाराजा बालि अब श्रीगुरु के चरणों की शरण में पहुँच गये। गुरु-पद-पंकजों को नमन कर अंजुली जोड़कर विनती करने लगे।

हे प्रभो! मेरा मन अब आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द का सतत आस्वादन करने को ललक उठा है। ये सांसारिक भोग विलास, राग-रंग मुझे स्वप्न में भी नहीं रुचते हैं। ये ऊँचे-ऊँचे महल अटारियाँ श्मशान की राख समान प्रतिभासित होते हैं, अत: हे नाथ! मुझे पारमेश्वरी दिगम्बर-दीक्षा देकर अनुगृहीत कीजिए।

श्रीगुरु द्वारा मुनिदीक्षा

जिस तरह फूल की खुशबू, चन्द्रमा की शीतलता, वसंत ऋतु की छटा, सज्जनों की सज्जनता, शूरवीरों का पराक्रम छिपा नहीं रहता, उसी प्रकार भव्यों की भव्यता, वैरागी की उदासीनता छिपी नहीं रहती। पूज्य गुरुवर ने अपनी कुशल प्रज्ञा से शीघ्र मुक्ति सम्पदा के अधिकारी महाराजा बालि की पात्रता को परख लिया। जाति, कुल, देश आदि से विशिष्ट होने से जिनदीक्षा के योग्य हैं।

इसप्रकार पात्र जानकर श्रीगुरु ने जिनागमानुसार प्रथम क्षेत्र, वास्तु आदि १० प्रकार का बहिरंग परिग्रह का त्याग कराया। केशों का लोंच कर, देह के प्रति पूर्ण निर्मोही हो गये।

मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी चार कषायों का त्याग तो पहले ही कर चुके थे; इसके उपरान्त अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषाय चौकड़ी एवं नव नोकषाय परिग्रह आदि शेष अंतरंग परिग्रहों को त्याग कर

स्वरूपमग्न हो गये। इस तरह उन्होंने विधिपूर्वक जिनेश्वरी दिगम्बरी दीक्षा प्रदान कर अनुगृहीत किया।

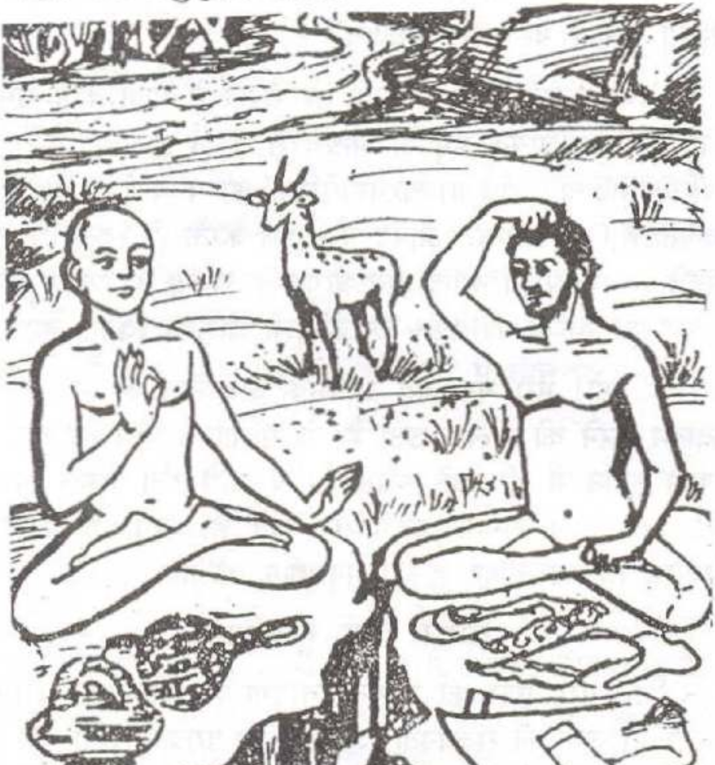

आ हा हा! किष्किंधापुरी नरेश अब परमेश बनने के लिये शीघ्रातिशीघ्र प्रयाण करने लगे। क्षण-क्षण में अन्तर्मुख हो अतीन्द्रिय आनन्द की गटागट घूँटें पीते हुए सिद्धों से बातें करने लगे। अहो! जमे जमाये ध्रुवधाम में अब गुरुवर की परिणति मंथर हो गई। चैतन्यामृत भोजी गुरुवर अब सादि अनंत काल के लिये परिग्रह रहित हो यथाजातरूपधारी (जैसे माता ने बालक को जन्म दिया ऐसे अन्तर-बाह्य निर्विकार नग्नरूप) बन गये। पंच महाव्रत, पंच समिति, पंच इन्द्रियविजय, षट्-आवश्यक एवं सात शेष गुण, कुल २८ मूलगुणों को निरतिचार रूप से पालन करते हुए रत्नत्रयमयी जीवन जीने लगे।

नवीन राजा सुग्रीव ने माता-पिता, रानियों एवं प्रजाजनों के साथ महाराजा बालि का दीक्षा समारोह हर्ष पूर्वक मनाया तथा भावना भायी कि हे गुरुवर! इस दशा की मंगल घड़ी हमें भी शीघ्र प्राप्त हो, हम सभी भी निजानंद बिहारी होकर आपके पदचिन्हों पर चलें।

पूज्य श्री मुनिपुंगव गुरुपद पंकजों की शरण ग्रहण कर जिनागम का अभ्यास करने में तत्पर हो गये। विनय सहित आगम अभ्यास करने से अल्पकाल में ही कैवल्य लक्ष्मी को वरण करते हैं, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। अत: पूज्य श्री बालि मुनिराज अल्पकाल में ही सम्पूर्ण आगम के पाठी हो गये।

जब कभी गुरुवर आहार चर्या को निकलते तो ४६ दोष और ३२ अंतराय को टालते हुए आहार ग्रहण करते, जो क्रमशः इस प्रकार हैं:-

भोजन की शुद्धता अष्ट दोषों से रहित है- उद्‌म, उत्पादन, एषण, संयोजन, प्रमाण, अंगार, धूम, कारण। इनमें उद्‌म दोष १६ प्रकार का है जो गृहस्थों के आश्रित है जिनके नाम हैं— उद्दिष्ट, अध्यवधि पूति, मिश्र, स्थापित, बलि, प्राभृत, प्राविष्कृत, क्रीत, प्रामृष्य, परावर्त, अभिहत, उद्‌भिन्न, मालिकारोहण, आछेद्य, अनिसृष्ट ये १६ दोष हैं। मुनिमार्ग को जानने वाला गृहस्थ ऐसे दोष लगाकर मुनिराज को आहार नहीं देता है और यदि इन दोषों का ज्ञान मुनिराज को हो जावे तो वे भोजन में अंतराय मानकर वापिस वन को चले जाते हैं।

अध:कर्म— आहार बनाने में छह काय के जीवों का प्राण घात हो वह आरंभ है। षट्काय के जीवों का उपद्रव करना उपद्रवण है। षट्काय के जीवों का छेदन हो जाना विद्रावण है और षट्काय के जीवों को संताप देना वह परितापन है। इसप्रकार षट्काय के जीवों को आरंभ, उपद्रवण, विद्रावण और परितापन देकर जो आहार स्वयं करे, अन्य से करावे और करते हुए को भला जाने; मन से, वचन से और काया से इस प्रकार नव प्रकार के दोषों से बनाया गया भोजन अध:कर्म दोष से दूषित है, उसे संयमी को दूर से ही त्याग करना

चाहिए। ऐसा आहार जो करते हैं वे मुनि नहीं गृहस्थ हैं। यह अध:कर्म नामक दोष छियालीस दोषों से भिन्न महादोष है।

प्रश्न :- मुनिराज तो अपने हाथ से भोजन बनाते नहीं हैं तो फिर ऐसा दोष इन्हें क्यों कहा?

उत्तर :- कहे बिना मंदज्ञानी कैसे जाने। जगत में अन्यमत के भेषी स्वयं करते भी हैं और कराते भी हैं और जिनमत में भी अनेक भेषी स्वयं करते हैं और कहकर कराते भी हैं, इसलिये इसको महादोष जानकर त्याग करना। अध:कर्म से बनाया हुआ भोजन लेने वाले को भ्रष्ट जानकर धर्ममार्ग में अंगीकार नहीं करना —ऐसा भगवान के परमागम का उपदेश है (भगवती आराधना पृ.१०२)

अब साधु के आश्रित होने वाले सोलह उत्पादन दोष :—

धात्री दोष, दूत, विषग्वृत्ति, निमित्त, इच्छविभाषण, पूर्वस्तुति, पश्चात्स्तुति, क्रोध, मान, माया, लोभ, वश्यकर्म, स्वगुणस्त्वन, विद्योत्पादन, मंत्रोपजीवन, चूर्णोपजीवन। इन दोषों से युक्त जो भोजन करता है उसका साधुपना बिगड़ जाता है।

अब एषणा नामक भोजन के दश दोष :- शंकित, म्रक्षित, निक्षिप्त, पिहित, व्यवहरण, दायक, उन्मिश्र, अपरिणत, लिप्त और परित्यजन। इस प्रकार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से इन दोषों का त्याग करके तथा उद्गम, उत्पादन, एषणा के बियालीस भेद रूप दोष से रहित तथा संयोजना रहित, प्रमाण सहित अंगार तथा धूमदोष रहित भोजन करते हैं।

नवधा भक्ति से युक्त दातार के सात गुण सहित श्री मुनिराज आहार लेते हैं। १. प्रतिग्रह, २. उच्चस्थान, ३. चरण धोना, ४. अर्चना ५. नमस्कार ६. मनशुद्धि ७. वचनशुद्धि ८. कायशुद्धि ९. आहार शुद्धि, —यह नवधा भक्ति है।

१. दान देने में, जिसके धर्म का श्रद्धान हो २. साधु के रत्नत्रय

आदि गुणों में भक्ति हो ३. दान देने में आनंद हो ४. दान की शुद्धता-अशुद्धता का ज्ञान हो ५. दान देकर इस लोक और परलोक सम्बंधी भोगों की अभिलाषा न हो ६. क्षमावान हो ७. शक्ति युक्त हो —ये दाता के सप्त गुण हैं।

बत्तीस अंतराय — काक-अंतराय, अमेध्य, छर्दि, रोधन, रुधिर, अश्रुपात, जान्वध:परामर्श, जानूपरिव्यतिक्रम, नाभ्यधोनिर्गमन, स्वप्रत्याख्यातसेवन, जीववध, काकादिपिंडहरण, पिंडपतन, पाणिजंतुवध, मांसदर्शन, उपसर्ग, पंचेन्द्रियगमन, भाजनसंपात, उच्चार, प्रस्रवण, भिक्षापरिभ्रमण, अभोज्यगेहप्रवेश, पतन, उपवेशन, दष्ट, भूमिस्पर्श, निष्ठीवन, कृमिनिर्गमन, अदत्त, शस्त्रप्रहार, ग्रामदाह, पादग्रहण, और हस्तग्रहण, इनके अलावा और भी चांडालादि स्पर्श, इष्टमरण, प्रधान पुरुषों का मरण इत्यादि अनेक कारणों की उपस्थिति होने पर इन्हें टालकर आचारांग की आज्ञाप्रमाण शुद्धता सहित ही पूज्य बालि मुनिराज आहार ग्रहण करते।

अहो! अनाहारीपद के साधक मुनिकुंजर क्षण-क्षण में अन्तर्मुख हो आनंदामृत-भोजी अति-शीघ्रता से अशरीरीदशामय शाश्वतपुरी के लिये अग्रसर होते जाते हैं।

श्री गुरुराज ने देखा कि ये बालिमुनि तो असाधारण प्रज्ञा के धनी हैं। विनय तो रोम-रोम में समाई हुई है, विनय की अतिशयता है। मति, श्रुत, अवधिज्ञान के धारी हैं और वज्रवृषभनाराचसंहनन के भी धारी हैं। मनोबल तो इनका मेरू के समान अचल है। देव, मनुष्य, तिर्यंच घोर उपसर्ग करके भी इन्हें चलायमान नहीं कर सकते। आत्मभावना और द्वादशभावना को निरन्तर भाने के कारण कभी भी आर्त-रौद्र परिणति को प्राप्त नहीं होते और बहुत काल के दीक्षित भी हैं। मेरे (श्रीगुरु) निकट रहकर निरतिचार चारित्र का सेवन भी करते हैं। क्षुधादि बाईस परीषहों पर जयकरण शील भी हैं। दीक्षा, शिक्षा एवं प्रायश्चित विधि में भी कुशल हैं। धीर-वीर गुण गंभीर हैं। —ऐसे सर्वगुण सम्पन्न गणधर तुल्य विवेक के धनी बालि मुनिराज को श्रीगुरु ने एकलविहारी रहने की आज्ञा दे दी।

श्री गुरु की बारम्बार आज्ञा पाकर श्री बालिमुनिराज अनेक वन-उपवनों में विहार करते हुए अनेक जिनालयों की वंदना करते हैं। अनेक जगह अनेक आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणधर ये पंच प्रधानपुरुषों के संघ को प्राप्त किया। जिससे उनके गुणों में दृढ़ता वृद्धिगत हुई, ज्ञान की निर्मलता हुई, चारित्र की परिशुद्धि हुई। कभी कहीं धर्मलोभी भव्यों को धर्मोपदेश देकर उनका भवसंताप का हरण किया ।

आ हा हा! ध्यान-ज्ञान तो उनका जीवन ही है। निश्चल स्थिरता के लिये कभी माह, कभी दो माह का उपवास करके गिरिशिखर पर आतापन योग धारण कर लेते, तो कभी आहार-चर्या हेतु नगर में पधारते, कभी आहार का योग बन जाता था तो कभी नहीं भी बनता था; पर समतामूर्ति गुरुवर वन में जाकर पुन: ध्यानारूढ़ हो जाते, अतीन्द्रिय आनंद का रसास्वादन करते हुए सिद्धों से बातें करते। इस प्रकार विहार करते हुए धर्म का डंका बजाते हुए अब गुरुवर श्री आदिप्रभु के सिद्धि-धाम कैलाश श्रृंगराज पर पहुँचे. वहाँ के सभी जिनालयों की वंदना कर पर्वत की गुफा में जा विराजमान हुए और स्वरूपगुप्त हो गये।

अब थोड़ा दशानन/लंकेशनृप की दशा का भी अवलोकन करते हैं । राजाओं की तो स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी होती है कि नव निधानों में से जहाँ जो निधान दिखा कि बस यह तो मुझे ही मिलना चाहिए, क्योंकि मैं राजा हूँ, निधानों के स्वामी तो राजा ही होते हैं।

एक बार दशानन सज-धज के रत्नावली नाम की कन्या के विवाह के लिये विमान में अपनी पटरानी मंदोदरी आदि रानियों के साथ बैठा हुआ आकाशमार्ग से जा रहा था, जब उसका विमान कैलाशपर्वत पर, जहाँ श्री बालि मुनिराज तपस्या कर रहे थे, वहाँ पहुँचा तब अचानक वह अटक गया। बहुत उपाय करने पर भी विमान आगे नहीं चला, लंकेश विचारने लगा इसका क्या कारण है? चारों ओर देखने पर भी कुछ कारण नज़र नहीं आया। आता भी कैसे? क्योंकि

विवाह के राग में मतवाला हो जाने से उसे यह विवेक ही नहीं रहा कि जहाँ जिनालय होते हैं, जिनगुरु विराजते हैं उनके ऊपर से विमान तो क्या जगत के कोई भी वाहन गमन नहीं करते।

उसने ज्यों ही नीचे की ओर दृष्टि डाली तो उसे कुछ जिनालय एवं ध्यानस्थ मुनिराज दिखाई दिये, उसने अपना विमान नीचे उतारा; पर ज्यों ही उसकी नजर बालि मुनिराज पर पड़ी, बस फिर क्या था, उसके हृदय में क्रोध भड़क उठा उसने सोचा निश्चित इस बालि ने ही क्रोध से मेरा विमान अटकाया है; क्योंकि पूर्व बैर युक्त-बुद्धि में ऐसा ही सूझता है। स्व-पर विनाशक, दुर्गति का हेतु क्रोधासुर महापाप करने के लिए रावण को उत्तेजित करने लगा कि अब बालि मुनि हो गया है, बदले में यह कुछ कर तो सकता नहीं; अत: बदला लेने का अच्छा अवसर है।

अरे रे! जिसे आगामी पर्याय नरक की ही बितानी है —ऐसे उस दुर्मति सम्पन्न दशानन ने आदिप्रभु का सिद्धिधाम कैलाशपर्वत सहित बालि मुनिराज को समुद्र में पटक देने का विचार किया और अपनी शक्ति एवं विद्या के बल से पर्वत को उखाड़ने लगा। उसका दुष्कृत देख महाविवेकी, धर्ममूर्ति बालि मुनिराज को यह विचार आया कि ये तीन चौबीसी के अगणित अनुपम भव्य जिनालय, अनेक गुणों के निधान मुनिराज अनेक स्थानों में आत्ममग्न विराजमान हैं इत्यादि — ये सभी नष्ट हो जायेंगे तथा इस पर्वत के निवासी लाखों जीव प्राणहीन हो जावेंगे। अनेक निर्दोष, मूक पशु इसके क्रोध के ग्रास बन जावेंगे। दशानन की सर्व विनाशकारी करतूत को रोकने के लिए श्री बालि मुनिराज ने अपनी कायबलऋद्धि का प्रयोग किया।

प्रश्न : क्या मुनिराज भी ऋद्धियों का प्रयोग करते हैं?

उत्तर : मुनिराजों को तो अपनी स्वरूप आराधना से फुर्सत ही नहीं है, परन्तु धर्म पर आये संकट को दूर करने के लिए उन्हें अपनी ऋद्धियों का प्रयोग करना पड़ता है।

प्रश्न : जब उनके पास अस्त्र-शस्त्रादि कुछ भी नहीं होते, तब फिर उन्होंने उसका प्रयोग कैसे किया और वह प्रयोग भी क्या था ?

उत्तर : श्रीमुनिराजों को निजात्म आराधना के कारण अनेक ऋद्धियाँ प्रगट हो जाती हैं, जैसे– चारणऋद्धि, वचनऋद्धि, जलऋद्धि, कायऋद्धि आदि। श्री बालिमुनि को कायबलऋद्धि थी। उन्होंने जिनालयों आदि की रक्षा के भाव से अपने बाँये पैर का अंगूठा नीचे को दबाया/ मुनि वज्रवृषभनाराचसंहनन के धनी तो थे ही, एक अंगूठे को जरा सा नीचे की ओर किया कि उसका बल भी दशानन को असह्य हो गया।

उसके भार से दबकर वह निकलने में असमर्थ हो जाने से जोर-जोर से चिल्लाने लगा– मुझे बचाओ, मुझे बचाओ; उसकी करुण पुकार

सुनकर विमान में बैठी हुई मंदोदरी आदि रानियाँ तत्काल पूज्य बालि मुनिराज के पास दौड़ी आईं और हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई अपने पति के प्राणों की भिक्षा माँगने लगीं। हे प्रभु! आप तो क्षमावंत, दयामूर्ति हो, हमारे पति का अपराध क्षमा कीजिए प्रभु! क्षमा कीजिए।

परम दयालु मुनिराज ने अपना अंगूठा ढीला कर दिया, तब दशानन निकलकर बाहर आया। तब मुनिराज के तप के प्रभाव से देवों के आसन कम्पायमान होने लगे। तब देवों ने अवधिज्ञान से आसन कंपित होने का कारण जाना। अहो मुनिराज, धन्य मुनिराज आपका तप, इस प्रकार कहते हुए सभी ने अपने आसनों से उतर कर परोक्ष नमस्कार किया और तत्काल सभी ने कैलाशपर्वत पर आकर पंचाश्चर्य बरसाये एवं श्रीगुरु को नमस्कार किया। पश्चात् दशानन का **''रोतिति रावण:''** अर्थात् रोया इसलिए रावण नाम रखकर देव अपने-अपने स्थानों को चले गये।

श्री बालि मुनिराज की तपश्चर्या का प्रभाव देखकर रावण भी आश्चर्य में पड़ गया। वह मन ही मन बहुत पछताया, अरे बारम्बार अपराध करने वाला मैं कितना अधर्मी हूँ और ये बालिदेव सदा निरपराधी होने पर भी मैं इन्हें कष्ट देता ही आ रहा हूँ। धन्य है इनकी क्षमा, इसप्रकार विचार करके रावण श्री मुनिराज को नमस्कार करता हुआ अपने अपराधों की क्षमा-याचना करने लगा।

श्रीगुरु ने रावण को भी ''सद्धर्मवृद्धिरस्तु'' कहकर वह भी दु:खों से मुक्त हो ऐसा अभिप्राय व्यक्त किया। वीतरागी संतों का जगत में कोई शत्रु-मित्र नहीं है।

अरि-मित्र महल-मशान, कंचन-काच निन्दन-थुति करन।
अर्घावतारण असिप्रहारण, में सदा समता धरन।।

श्रीगुरु से धर्मलाभ का आशीर्वाद प्राप्त कर रावण अपने विमान में बैठकर अपने इच्छित स्थान को चला गया।

अनेक वन-उपवनों में विहार करते हुए भावी सिद्ध भगवान

अनंतसिद्धों के सिद्धिधाम कैलाशपर्वत पर तो कुछ समयों से विराजमान थे ही वह पावन भूमि पुनः गुरुवर के चरण स्पर्श से पावन हो गयी। दो तीर्थों का मिलन– एक भावतीर्थ और दूसरा स्थापनातीर्थ, एक चेतनतीर्थ और दूसरा अचेतनतीर्थ। हमें ऐसा लगता होगा कि क्या भावी भगवान तीर्थयात्रा हेतु आये होंगे! अरे, गुरुवर तो स्वयं रत्नत्रयरूप परिणमित जीवन्ततीर्थ हैं।

पूज्य गुरुवर ध्यानस्थ हैं...अहा, ऐसे वीतरागी महात्मा मेरे शीष पर पधारें !....इसप्रकार हर्षित होता हुआ मानो वह पर्वत अपने को गौरवशाली मानने लगा। श्रृंगराज अभी तक यही समझता था कि इस लोक में मैं ही एक अचल हूँ, परन्तु अपने से अनंतगुणे अचल महात्मा को देखकर वह भी आश्चर्यचकित रह गया, मानो वह सोच रहा हो कि दशानन की शक्ति एवं विद्या ने मुझे तो हिला दिया, लेकिन ये गुरु कितने अकंप हैं कि जिनके बल से मैं भी अकंप रह सका। वृक्ष समूह सोचता है कि क्या ग्रीष्म का ताप गुरुवर पर अपना प्रभाव नहीं डलता होगा? इतनी गर्मी में भी ये गुरुवर हमारी शीतल पवन की भी अपेक्षा नहीं करते।

कितने दिनों से ये संत यहाँ विराजमान हैं, न किसी से कुछ बोलते, न चलते, न खाते, न पीते, न हिलते, बस ध्यानमग्न ही अकृत्रिमबिम्बवत् स्थित हैं। बालि राजा का महाबलवानपना आज सचमुच जाग उठा है, क्षायिक सम्यक्त्व उनकी सेना का सेनापति है और अनंतगुणों की विशुद्धिरूप सेना शुक्लध्यान द्वारा श्रेणीरूप बाणों की वर्षा कर रही है, अनंत आत्मवीर्य उल्लसित हो रहा है, केवलज्ञान लक्ष्मी विजयमाला लेकर तैयार खड़ी है, इसी से मोह की समस्त सेना प्रतिक्षण घटती जा रही है। अरे, देखो...... देखो! प्रभु तो शुद्धोपयोग रूपी चक्र की तीक्ष्ण धार से मोह को अस्ताचल की राह दिखाने लगे। क्षपकश्रेणी में आरूढ़ हो अप्रतिहतभाव से आगे बढ़ते-बढ़ते आठवें..... नौवें...... दसवें गुणस्थान में तो लीलामात्र में पहुँच गये। अहो! अब शुद्धोपयोग की उत्कृष्ट छलांग लगी और मुनिराज पूर्ण वीतरागी हो गये, प्रभु हो गये।

अहा! वीतरागता के अति प्रबलवेग को बर्दाश्त करने में असमर्थ ज्ञानावरण, दर्शनावरण एवं अन्तराय तो क्षणमात्र में भाग गये। अरे, वे तो सत्त्व विहीन ही हो गये। अब अनंत कलाओं से केवलज्ञान सूर्य चमक उठा....अहा! अब नृपेश परमेश बन गये, संत भगवंत हो गये, अल्पज्ञ सर्वज्ञ हो गये, अब वे बालि मुनिराज अरहंत बन गये.... 'णमो अरहंताणं।'

इन्द्रराज की आज्ञा से तत्काल ही कुबेर ने गंधकुटी की रचना की, जिसपर प्रभु अंतरीक्ष विराजमान हैं, शत इन्द्रों ने प्रभु को नमन कर केवलज्ञान की पूजा की। अभी तो इन्द्रगण केवलज्ञानोत्सव मना ही रहे थे कि प्रभु तृतीय शुक्लध्यान से योग निरोध कर अयोगी गुणस्थान में पहुँच गये। चतुर्थ शुक्लध्यान से चार अघाति कर्मों का नाश कर पाँच स्वरों के उच्चारण जितने काल के बाद प्रभु अब शरीर रहित हो ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोकाग्र में पहुँच गये। 'णमो सिद्धाणं।'

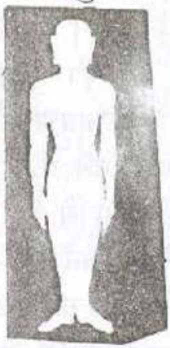

बिन कर्म, परम, विशुद्ध जन्म; जरा, मरण से हीन हैं।
ज्ञानादि चार स्वभावमय; अक्षय, अछेद, अछीन हैं।।
निर्बाध, अनुपम अरु अतीन्द्रिय; पुण्य-पाप विहीन हैं।
निश्चल, निरालम्बन, अमर, पुनरागमन से हीन हैं।।

एक बार श्री सकलभूषण केवली से विभीषण ने विनयपूर्वक पूछा— हे भगवन्! इसप्रकार के महाप्रभावशाली यह बालिदेव किस पुण्य के फल से उत्पन्न हुए हैं? जगत को आश्चर्यचकित कर देने वाले प्रभाव का कुछ कारण तो अवश्य होगा। प्रभो! कृपया हमें इसका समाधान हो।

उत्तर यह मिला कि इसी आर्यखंड में एक वृन्दारक नाम का

वन है। उसमें एक मुनिवर आगभ का पाठ किया करते थे और उसी वन में रहने वाला एक हिरण प्रतिदिन उसे सुना करता था। वह हिरण शुभ परिणामों से आयु पूर्ण कर उस पुण्य के फल से ऐरावत क्षेत्र के स्वच्छपुर नगर में विरहित नामक वणिक की शीलवती स्त्री के मेघरत्न नाम का पुत्र हुआ। वहाँ पर पुण्य प्रताप से सभी प्रकार के सांसारिक सुख भोगकर अणुव्रत धारण किये, उसके फल स्वरूप वहाँ से च्युत होकर ईशान स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ के पुण्योदय जन्य वैभव में वे लुभाये नहीं, वहाँ पर भी अपनी पूर्व की आराधना अखंड रूप से आराधते हुए दैवी सुख भोग कर देवायु पूर्ण कर पूर्वविदेह के कोकिलाग्राम में कांतशोक वणिक की रत्नाकिनी नामक स्त्री के सुप्रभ नाम का पुत्र हुआ। एक दिन उसे श्रीगुरु का संघ प्राप्त हुआ, फिर क्या था भावना तो भा ही रहे थे कि "घर को छोड़ वन जाऊँ, मैं भी वह दिन कब पाऊँ। " गुरुराज से धर्म श्रवण कर तत्काल संसार, देह, भोगों से विरक्ति जाग उठी। फलस्वरूप उन्होंने पारमेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली और बहुत काल तक उग्र तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में गये और वहाँ से च्युत होकर यहाँ यह चमत्कारी महाप्रभावशाली बालिदेव हुआ।

तात्पर्य यह है कि उस होनहार हिरण ने श्रीगुरु के मुखारविंद से मात्र शब्द ही सुने थे, ऐसा नहीं भावों को भी उसने समझ लिया था। उसे अन्तरंग से जिनगुरु एवं जिनवाणी के प्रति बहुमान था, भक्ति थी, उन संस्कारों का फल यह हुआ कि दूसरे ही भव में वह मनुष्य हुआ और अणुव्रत धारण कर मोक्षमार्गी बन गया, इतना ही नहीं उसने अपनी आराधना अविरल रूप से चालू रखी, उसी के फल स्वरूप पाँचवे भव में वह बालिदेव हुआ और इसी भव से साधना पूर्ण करके सिद्धत्त्व को प्राप्त किया। कहा भी है:—

धन्य-धन्य है घड़ी आज की, जिनधुनि श्रवन परी।
तत्त्व प्रतीति भई अब मोंकों, मिथ्या दृष्टि टरी।

②

महारानी चेलना

मंगलाचरण

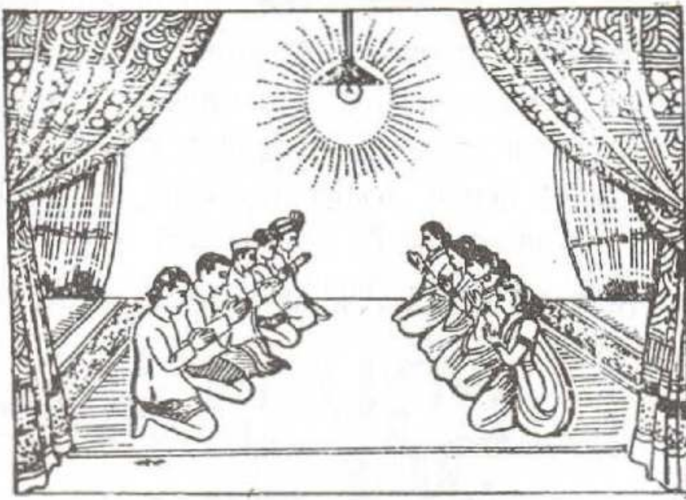

करूँ नमन मैं अरिहंत देव को
    पंच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।
करूँ नमन मैं सिद्ध भगवंत को
    पंच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।
करूँ नमन मैं आचार्य देव को
    पंच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।
करूँ नमन मैं उपाध्याय देव को
    पंच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।
करूँ नमन मैं सर्व साधु को
    पंच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।

प्रथम-दृश्य

जिनधर्म के वियोग में दुखी चेलना

(रंगमंच पर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार– बोलिये, भगवान महावीर स्वामी की जय! लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व जब भगवान महावीर इस भारतभूमि में तीर्थंकर-रूप में विचरते थे, उस समय का यह प्रसंग है। महारानी चेलना द्वारा जैनधर्म की जो महान प्रभावना हुई, वह यहाँ संवाद द्वारा दिखाई जा रही है। चेलना देवी भगवान महावीर की मौसी, सती चंदना की बहन, श्रेणिक राजा की महारानी, राजगृही के राजोद्यान में उदासचित्त बैठी हैं। वे क्या विचार कर रही हैं, यह आप उन्हीं के मुख से सुनिये।

(चेलनादेवी विचारमग्न उदासचित्त बैठी हैं। वह स्वयं स्वयं से ही कह रही हैं।)

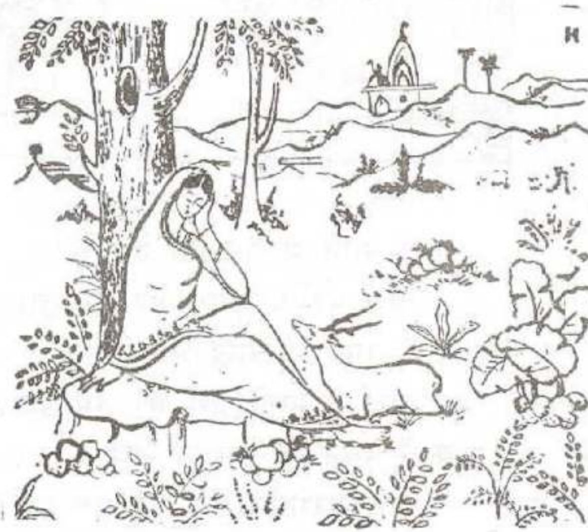

नाटक के पात्र– (१) रानी चेलना (२) राजा श्रेणिक (३) अभयकुमार (४) एक एकान्तमतावलम्बी गुरु एवं एक उसका शिष्य (५) दीवानजी (६) नगर सेठ (७) दो सैनिक (८) अभयकुमार की बहिन (९) एक सखी (१०) माली (११) दूती।

आवश्यक सामग्री– कृत्रिम नाग, मुनिराज का स्टेच्यु या चित्र आदि।

चेलना- अरे रे ! जैनधर्म की प्रभावना बिना यहाँ बहुत सुनसान-सा लग रहा है। यह राजवैभव ....यह राजमहल...... ये उपभोग की सामग्री...... इनमें मुझे रंचमात्र भी चैन नहीं मिलता है। हे भगवान्! हे वीतरागी जिनदेव!!

तुम्हारे दर्श बिन स्वामी ! मुझे नहिं चैन पड़ती है।
छवि वैराग्य तेरी सामने आंखों के फिरती है।।

(सखी का प्रवेश)

चेलना- सखी! अभयकुमार को बुलाओ।

सखी- जी माता !

(सखी जाती है और अभयकुमार सहित लौट आती है।)

अभय- माता प्रणाम ! (आश्चर्य से) आप बेचैन क्यों हो?

चेलना– (व्यथा से) पुत्र अभय ! कहाँ जैनधर्म की प्रभावना से भरपूर वैशाली नगरी और कहाँ यह राजगृही नगर! यहाँ तो जहाँ देखो वहाँ एकान्त, एकान्त और एकान्त। जैनधर्म बिना यह राज्य श्मसान-सा जंगल लगता है। बेटा! जैनधर्म के अभाव में मुझे यहाँ कहीं भी चैन नहीं है।

अभय- सत्य बात है, माता! अहो, वह देश धन्य है, जहाँ तीर्थंकर भगवान स्वयं विराज रहे हों। अरे रे ! यहाँ तो जिनेन्द्र भगवान के दर्शन ही दुर्लभ हो गए हैं।

चेलना– तुम सत्य कहते हो, पुत्र ! ना ही यहाँ कोई जिनमंदिर दिखते हैं और ना ही दिखते हैं कोई वीतरागी मुनिराज। हाय ! मैं ऐसे धर्महीन स्थान में कैसे आ गई?

नोट – अभयकुमार चेलना का पुत्र नहीं है, दूसरी रानी का पुत्र है, परन्तु धार्मिक स्नेह होने से दोनों में सगे माता-पुत्र जैसा ही प्रेम है। इस नाटक मे भगवान महावीर की दीक्षा के समाचार का प्रसंग भी संवाद की अनुकूलता को लक्ष में रखकर आगे पीछे रखा गया है, अत: इतिहासज्ञ पुरुषों से हमारा निवेदन है कि वे इस बात को लक्ष्य में रखें। —*लेखक*

अभय– माता ! अभी सारे भारत में बिहार, बंगाल, उज्जैन, गुजरात, मारवाड़, सौराष्ट्र आदि अनेक राज्यों में जैनधर्म की प्रभावना हो रही है, परन्तु अपने इस राज्य में जगह-जगह एकान्त धर्म का ही प्रचार एवं प्रभाव है।

चेलना– हाँ, बेटा! इसलिए ही मुझे यहाँ नहीं रुचता है।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेत्चक्रवर्त्यपि।
स्यात्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासित:।।

अभय– इसका अर्थ क्या है माता !

चेलन– सुनो ! इसका आशय है कि हे प्रभु ! जिनधर्म के बिना तो मुझे चक्रवर्ती पद भी नहीं चाहिए, भले ही जिनधर्म सहित दरिद्री हो जाऊँ; क्योंकि इस चक्रवर्ती पद से तो वह दरिद्र सेवक अच्छा है, जो जैनधर्म के सानिध्य में वास करता हो।

अभय– सत्य है, जैनधर्म के सिवाय अन्य कोई धर्म शरणरूप नहीं है।

चेलना– महाराज स्वयं भी एकान्तमत के अनुयायी हैं। इस राज्य में कहीं जैनधर्म के पालनकर्ता दिखते नहीं हैं। हे माता! हे पिता! आपने बाल्यकाल में जिनेन्द्रभक्ति के और तत्त्वज्ञान के जो पवित्र संस्कार हमको दिए हैं, मुझे वे ही अभी शरण रूप हैं।

अभय– माता ! आपके पिता चेटक महाराज तो जैनधर्मी के सिवाय दूसरे किसी से अपनी पुत्री का ब्याह रचाते ही नहीं ।

चेलना– पिताजी को तो अभी खबर ही नहीं होगी कि मैं कहाँ हूँ? पिताजी ने जो जैनधर्म के संस्कार डाले हैं, उसके बल से अब तो मैं ही महाराज को जैन बनाऊँगी और अपने जैनधर्म की शोभा बढ़ाऊँगी।

अभय– धन्य माता, आपके प्रताप से ऐसा ही हो। सारे राज्य में जैनधर्म की प्रभावना हो जाए।

चेलना– पुत्र ! वैशाली के कोई समाचार नहीं आए हैं। त्रिशलामाता के नन्दन वर्द्धमान कुमार क्या करते होंगे ? मेरी छोटी बहन चंदना क्या करती होगी ? अहो ! वह देश धन्य है, जहाँ तीर्थंकर भगवान स्वयं ही विराज रहे हों। अरे, वहाँ के कुशलक्षेम के समाचार सुनने मिलते तो कितना अच्छा रहता?

अभय– देखो माता! दूर से कोई दूती आ रही हो।

(दूती का प्रवेश)

चेलना– आओ बहन, आओ ! क्या हैं मेरे देश के समाचार? वहाँ चतुर्विध संघ तो कुशल है? वर्द्धमान कुमार अभी दीक्षित तो नहीं हो गये? मेरी छोटी बहन चंदना तो आनंद में है न?

दूती– माता ! जैनधर्म के प्रताप से चतुर्विध संघ तो कुशल है। वर्द्धमान कुमार तो वैराग्य प्राप्त कर दीक्षित हो गये।

चेलना– हैं ! वर्द्धमान कुमार दीक्षित हो गये? धन्य है उनके वैराग्य को! मेरी त्रिशला बहन महाभाग्यशाली है। अरे रे! भगवान के वैराग्य का प्रसंग हमें देखने को नहीं मिला।

अभय– आप चंदनबाला के समाचार तो भूल ही गईं।

दूती– (खेद से) माता ! मैं क्या कहूँ ? कुछ दिन पहले चंदना

बहन और हम सब साथ में जंगल में खेलने गए थे, वहाँ चंदन बाला हमारे से अलग होकर अकेली-अकेली मुनिराज की भक्ति करती थी..... वहाँ कोई दुष्ट विद्याधर आकर चंदना को उठा ले गया।

चेलना– (आश्चर्य से) हैं, क्या मेरी बहन का अपहरण हो गया?

दूती– (द्रवित होकर) हाँ माता, बहुत दिनों से चारों तरफ सैनिक खोज में लगे हुए हैं, पर अभी तक कहीं पता नहीं लगा है।

चेलना– हा....... हो प्यारी बहन चंदना ! तुम कहाँ हो?

अभय– माता! धैर्य रखो......यही अपनी परीक्षा का समय है।

चेलना– पुत्र ! अभी चारों तरफ की प्रतिकूलता में एक तेरा ही सहारा है।

अभय– आप दु:खी न हों ! आप तो अंतर के चैतन्यतत्त्व की जानकार हो, परम नि:शंकता, वात्सल्य और धर्मप्रभावना आदि गुणों से शोभायमान हो। इसलिए धैर्यपूर्वक अभी हम ऐसा कोई उपाय विचारें, जिससे सारे राज्य में जैनधर्म की विजय का डंका बज जाए।

चेलना– पुत्र ! क्या ऐसा कोई उपाय आपको सूझता है?

अभय– हाँ माता ! देखो, महाराज की आपसे बहुत प्रीति है, इसलिए आप उनको किसी प्रकार से यह बात समझाओ कि एकान्तमत का एकान्त क्षणिकवाद मिथ्या है और अनेकान्त रूप जैनधर्म ही एकमात्र परम सत्य है। बस ! एक महाराज का हृदय पलटने के बाद हम बहुत कुछ कर सकते हैं।

चेलना– हाँ पुत्र ! तेरी बात सत्य है। मैं महाराज को समझाने का जरूर प्रयत्न करूँगी।

अभय– अच्छा माता, मैं जाता हूँ ।

(अभयकुमार चला जाता है।)

द्वितीय दृश्य

जिनधर्म प्रभावना का अवसर

(चेलना विचारमग्न बैठी है। उसके पास एक सखी भी है।)

(राजा श्रेणिक का प्रवेश)

सखी– बहन ! श्रेणिक महाराज पधार रहे हैं।

श्रेणिक– क्या विचार कर रही हो देवी ! तुम इतनी उदास क्यों रहती हो? अरे, इस उदासी का कारण हमें बताओ ? शायद हम आपकी कुछ मदद कर सकें।

चेलना– महाराज ! आपकी इस राजगृही में मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता ।

श्रेणिक– (आश्चर्य से) अरे, यहाँ आपको क्या दु:ख है ? यह राजपाट, यह महल, नौकर-चाकर सब आपके ही हैं। आप अपनी इच्छानुसार इनका उपभोग करो।

चेलना– राजन् ! मुझे जो सर्वाधिक प्रिय है, उस जैनधर्म के बिना इस राजपाट का मैं क्या करूँ ! संसार में जैनधर्म के सिवाय दूसरा कोई धर्म सत्य नहीं है। जैसे मुर्दे के ऊपर श्रृंगार नहीं शोभता, वैसे हे राजन् ! जैनधर्म बिना यह आपका राजपाट नहीं शोभता। जैनधर्म बिना यह महाराजा का पद व्यर्थ है। मुझे जैनधर्म सिवाय कुछ भी प्रिय नहीं है।

श्रेणिक– सुनो देवी ! आप जैनधर्म को ही उत्तम समझ रही हो, परन्तु भूल कर रही हो। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जगत में एकान्तमत ही महाधर्म है। यह राजपाट, लक्ष्मी आदि मुझे एकान्तमत के प्रताप से ही मिली है।

चेलना– नहीं-नहीं राजन् ! जिनेन्द्र भगवान सर्वज्ञ हैं, उन सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ अनेकान्तमय जैनधर्म ही परम सत्य है। इसके

सिवाय जगत में दूसरा कोई सत्यधर्म है ही नहीं। स्वामी ! यह राजपाट मिला, उससे आत्मा की कोई महत्ता नहीं, आपका एकान्तमत तो एकान्त क्षणिकवादी है और एकान्ती गुरु सर्वज्ञता के अभिमान से दग्ध हैं। जबकि अरिहंतदेव के अतिरिक्त मोक्षमार्ग का प्रणेता इस जगत में कोई है ही नहीं। राजन् ! इस पावन जैनधर्म के अंगीकार करने से ही आपका कल्याण होगा।

(अभयकुमार का प्रवेश)

श्रेणिक– देवी ! यह चर्चा छोड़ो और इस राज्य में आप इच्छानुसार जैनधर्म का अनुसरण करो.........जिनमंदिर बनावाओ, जिनेन्द्रपूजन और महोत्सव कराओ, आपके लिए ये राज्य भंडार खुले हैं, इसलिए आप दु:ख छोड़ो और आपको जैसे प्रसन्नता होवे वैसा करो। आपको जैनधर्म के लिए सब कुछ करने की छूट है....... परन्तु मैं तो एकान्तमत को ही पालने वाला हूँ, मैं एकान्तमत को छोड़कर, अन्य किसी भी धर्म को उत्तम नहीं मानता हूँ।

अभय– अभी एकान्तमत के अभिमान से आप जैसा चाहो वैसा कहो, परन्तु मेरी बात याद रखना कि एक बार मेरी इन चेलना माता के प्रताप से आपको जैनधर्म की शरण में आना ही पड़ेगा और उस समय आपके पश्चात्ताप का पार नहीं रहेगा।

श्रेणिक– तुम यह बात छोड़ो। मेरे एकान्त गुरु तो सर्वज्ञ हैं, वे सब बात जान सकते हैं।

चेलना– नहीं, महाराज ! वे सर्वज्ञ नहीं हैं, पर सर्वज्ञता का ढोंग करते हैं। जिसको अभी तक आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ही ज्ञान नहीं है, वह सर्वज्ञ कहाँ से हो सकता है?

श्रेणिक– अरे देवी ! परीक्षा किये बिना ऐसा कहना उचित नहीं है।

अभय– ठीक है महाराज ! आपके गुरु सर्वज्ञ हों तो आज

हमारे यहाँ भोजन के लिए उनको आमंत्रित कीजिए, हम उनकी परीक्षा करेंगे।

श्रेणिक– बहुत अच्छा, मैं अभी मेरे गुरु को भोजन पर आमंत्रित करता हूँ।

(राजा श्रेणिक चले जाते हैं।)

चेलना– पुत्र ! अब हम अपने जैनधर्म की प्रभावना के लिए सब उपाय कर सकते हैं। अब मैं महाराजा को बता दूँगी कि एकान्तमत कैसे ढोंगी है, परन्तु मुझे इतने से संतोष नहीं होगा। जब सारे नगर में, घर-घर में एकान्तमत की जगह जैनधर्म का झंडा फहरायेगा और जैनधर्म की जयनाद से पूरा नगर गुंजायमान होगा, तभी मुझे संतोष होगा।

अभय– हे माता ! आपके प्रताप से अब यह अवसर बहुत दूर नहीं। मुझे विश्वास है कि आपके प्रताप से अब महाराज थोड़े ही समय में एकान्तमत को छोड़कर जैनधर्म के परम भक्त बन जाएँगे और सम्पूर्ण नगर में जैनधर्म का जयकार गुंजायमान हो उठेगा।

चेलना– वाह, पुत्र वाह ! धन्य होगी वह घड़ी, जब हमारे दिगम्बर जैनधर्म का यहाँ मन्दिर होगा।

अभय– माता ! अवश्य होगा। हम मन्दिर बनायेंगे और सबसे पहले बनायेंगे। अरे हाँ....

छोटा-सा मन्दिर बनायेंगे, वीर गुण गायेंगे, वीर गुण गायेंगे।
महावीर गुण गायेंगे, छोटा-सा मन्दिर बनायेंगे वीर गुण गायेंगे।।टेक।।

हाथों में लेके सोने के कलशे, सोने के कलशे चांदी के कलशे।
प्रभुजी का न्हवन करायेंगे, वीर गुण गायेंगे।।छोटा-सा मन्दिर०।।१।।

हाथों में लेके पूजा की थाली, पूजा की थाली, अष्टद्रव्यों की थाली।
प्रभुजी का पूजन रचायेंगे, वीर गुण गायेंगे।। छोटा-सा मन्दिर०।।२।।

हाथों में लेके झांझ मजीरे, झांझ मजीरे, भाव भरीजे।
प्रभुजी की भक्ति करायेंगे वीर गुण गायेंगे।।छोटा-सा मन्दिर०।।३।।

चेलना– पुत्र अभय ! महाराज ने हमको जैनधर्म के लिए जो करना हो, वह करने की छूट दे दी है, उसका हम आज से ही उपयोग करेंगे।

अभय– हाँ माता ! हमें ऐसा ही करना चाहिए । नहीं तो एकान्ती गुरु बीच में विघ्न डालेंगे, परन्तु हम जैनधर्म की प्रभावना के लिए क्या उपाय करेंगे ?

चेलना– पुत्र ! मेरे हृदय में एक भव्य जिनमन्दिर बनवाने का विचार आया है, अभी दीवानजी को बुलाकर उसकी शुरुआत कर दें।

अभय– आपका विचार बहुत अच्छा है। हम जिनमन्दिर में श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा का ऐसा भव्य महोत्सव करें कि जैनधर्म का प्रभाव देखकर सारा नगर आश्चर्य में पड़ जाए।

चेलना– हाँ पुत्र ! ऐसा ही करेंगे। तुम अभी जाकर दीवानजी को बुला लाओ।

अभय– जाता हूँ माताजी।

(जाकर दीवानजी सहित आता है)

दीवानजी– नमस्ते माताजी !

चेलना– पधारो दीवानजी ! आपको एक मंगल कार्य सौंपने के लिए बुलाया है।

दीवानजी– कहिये महारानीजी ! क्या आज्ञा है ?

चेलना– देखो दीवानजी, मेरी इच्छा एक अत्यन्त भव्य जिनमन्दिर बनवाने की है। आप शीघ्र ही उसकी तैयारी करो तथा उसमें जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की भी योजना बनाओ।

दीवानजी– जैसी आपकी आज्ञा; मेरा धन्य भाग्य है, जो ऐसा मंगल कार्य आपने मुझे सौंपा। इस मंगल कार्य के लिए कितनी सोने की मोहरें खर्च करने की आपकी इच्छा है?

चेलना– दीवानजी ! कम से कम एक करोड़ सोने की मोहरें तो जरूर ही खर्च करना। इसके उपरांत विशेष आपको मन भावे उतनी अधिक से अधिक खर्च करने की आपके लिए छूट है। जिनमन्दिर की शोभा में, सुन्दरता में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहनी चाहिए और प्रतिष्ठा महोत्सव तो ऐसा उत्कृष्ट और भव्य होना चाहिए कि सारा नगर जैनधर्म के जय-जयकार से गुंजायमान हो उठे। इस कार्य के लिए राज्य के भंडार खुले हैं।

दीवानजी– जो आज्ञा, महारानीजी (दीवानजी चले जाते हैं और शीघ्र ही मन्दिर निर्माण का कार्य तेजी से आरम्भ करा देते हैं।)

तृतीय-दृश्य

रानी द्वारा परीक्षा होने पर एकान्ती गुरु क्षुब्ध

(मठ में एकान्ती गुरु आसन पर बैठे हैं।)

(नेपथ्य से एकान्ती गुरु)

एकान्तं शरणं गच्छामि।
एकान्तं शरणं गच्छामि।
एकान्तं शरणं गच्छामि।

(श्रेणिक का प्रवेश)

श्रेणिक– नमोऽस्तु महाराज !

एकान्ती गुरु– पधारो राजन् ! चेलना रानी के क्या समाचार हैं?

श्रेणिक– महाराज ! चेलना बहुत दिनों से उदास थी, कल ही मैंने उसको जैनधर्म के लिए जो करना हो वह करने की छूट दे दी है।

ए०गुरु– क्या ? चेलना को आपने जैनधर्म की छूट दे दी ?

श्रेणिक– जी हाँ ! और दूसरा समाचार यह है कि मैंने चेलना के पास आपकी खूब प्रशंसा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने आपको भोजन का निमन्त्रण दिया है।

ए०गुरु– बहुत अच्छा राजन् ! हम जरूर आयेंगे और चेलना को समझाकर एकान्त धर्म का भक्त बनाएँगे।

श्रेणिक– हाँ महाराज ! पर बराबर ध्यान रखना, क्योंकि महारानी की धर्मश्रद्धा बहुत अडिग है। कहीं हम उसके जाल में नहीं फंस जाएँ।

ए०गुरु– अरे राजन् ! इसमें क्या बड़ी बात है ? एकान्ती बनाना तो हमारे बायें हाथ का खेल है।

श्रेणिक– बहुत अच्छा महाराज !

(राजा श्रेणिक चले जाते हैं।)

ए०गुरु– (हर्ष से) आज तो महारानी के यहाँ भोजन के लिए जाना है।

ए०गुरु का शिष्य– हाँ हाँ गुरुदेव ! उसे समझाने का यह अच्छा अवसर है।

(अभयकुमार की बहन आती है।)

बालिका– पधारिये महाराज ! माताजी आपको भोजन के लिए बुला रही हैं।

ए०गुरु– हाँ चलिये।

(एकान्ती गुरु-शिष्य जाते हैं। थोड़ी देर में अन्दर का परदा खुलता है, वहाँ चेलना और सखी बैठी हुई है।)

चेलना– सखी ! आज तो ऐसी युक्ति करनी है कि एकान्ती गुरुओं की सर्वज्ञता का अभिमान चूर-चूर हो जाए।

सखी– बहन ! आपने कोई योजना विचारी है ?

चेलना– (कुछ धीरे से) हाँ सखी ! अभी एकान्ती गुरु आयेंगे। मैं जब तुम्हें संकेत करूँ, तब तुम गुप-चुप जाकर प्रत्येक की एक-एक मोचड़ी छिपा देना।

सखी– अच्छा माता ! एकान्ती गुरु आते ही होंगे।

(बालिका और एकान्ती गुरु आते हैं। अभयकुमार का पीछे से प्रवेश)

सखी– पधारो महाराज, यहाँ विराजो। (एकान्ती गुरु-शिष्य बैठते हैं।)

ए०गुरु– आपके आमंत्रण से आज बहुत प्रसन्ता हुई है।

(बालिका की ओर संकेत करते हुए) यह बालिका कौन है ?

अभय– मेरी छोटी बहन है।

ए०गुरु का शिष्य– अच्छा, बहन ! इन गुरुजी को वंदन तो करो।

बालिका– नहीं महाराज ! मैं जैनगुरुओं के अतिरिक्त किसी भी अन्य गुरु को वंदन नहीं करती हूँ।

ए०गुरु– क्यों नहीं करती हो?

बालिका– क्योंकि मैं, जो वीतरागी सर्वज्ञ हैं उन्हें तथा उनकी वाणी को और जो उनके मार्ग पर चलने वाले नग्न दिगम्बर मुनि हैं, उनको ही नमस्कार करती हूँ।

ए०गुरु का शिष्य– यह भी तो सर्वज्ञ हैं, फिर इन्हें नमस्कार क्यों नहीं करती।

बालिका– ऐसा ! आप सर्वज्ञ हो ?

ए०गुरु– हाँ, हम सब-कुछ जानते हैं।

बालिका– ठीक है, यदि आप सब-कुछ जानते हैं तो कह दो कि मेरे इस हाथ में क्या है ?

ए०गुरु– (विचार पूर्वक) बहन ! तेरे हाथ में सोने की मुहर है। सत्य है न ?

बालिका– असत्य ! बिलकुल असत्य । देखो महाराज ! मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं है, क्यों ? ऐसी ही है क्या आपकी सर्वज्ञता?

(एकान्ती गुरु के चेहरे पर कुछ विचित्र-सा भाव आकर चला जाता है।)

चेलना– अरे बेटी! अब यह चर्चा छोड़ो, उनको भोजन करने बैठाओ।

अभय– महाराज ! भोजन करने पधारो।

(एकान्ती गुरु अन्दर जाते हैं। थोड़ी देर बाद भोजन करके वापस आ जाते हैं।)

(जब एकान्ती गुरु भोजन करते हैं, तब चेलना इशारे से सखी द्वारा उनकी मोचड़ी छिपवा देती है)

ए०गुरु– महारानीजी ! आज यहाँ आने से हमको बहुत आनन्द हुआ और आपकी इतनी धर्मश्रद्धा देखकर तो और भी विशेष आनंद हुआ।

अभय– (व्यंग्य से) क्यों महाराज ? आपको यहाँ भोजन कराया, इसलिए क्या आप ऐसा मानते हो कि अब मेरी माताजी एकान्ती गुरु की अनुयायी बन गई हैं ?

ए०गुरु– हाँ, कुँवरजी ! हमको विश्वास है कि चेलना देवी जरूर एकान्तमत की भक्त बन जाएँगी और सम्पूर्ण भारत में एकान्ती गुरु की विजय का डंका बज जायेगा।

चेलना– (तेज स्वर में) अरे महाराज ! आपकी बात यह स्वप्न में भी बनने वाली नहीं है। आपके जैसे लाखों एकान्ती साधु आ जाएँ तो भी मुझको जैनधर्म से नहीं डिगा सकते।

ए०गुरु– महारानीजी ! आप जानती हो कि श्रेणिक महाराज भी एकान्ती गुरु के भक्त हैं। यदि आप एकान्तधर्म स्वीकार करोगी तो श्रेणिक महाराज आपके ऊपर बहुत प्रसन्न होवेंगे और राज्य की सम्पूर्ण सत्ता आपके ही हाथ में रहेगी।

चेलना– (तेज स्वर में) क्या राजसत्ता के लोभ में, मैं मेरे जैनधर्म को छोड़ दूँ । आप ध्यान रखिए, यह कभी भी संभव नहीं होगा।

अभय– (तेज स्वर में) महाराज ! यह राज्य तो क्या ? तीनलोक का साम्राज्य मिलता हो तो भी वह हमारे जैनधर्म के सामने

तो तुच्छ है। तीन लोक का राज्य भी हमको जैनधर्म से डिगाने में समर्थ नहीं, तो आप क्या डिगा सकते हैं?

ए०गुरु– महारानीजी ! हम जानते हैं कि आप महाचतुर और बुद्धिमान हो यदि आप जैसे समर्थजन जैनधर्म को छोड़कर हमारे अनुयायी बने तो सम्पूर्ण देश में हमारी कीर्ति फैल जाएगी, इसलिए आप चेतो और हमारी सलाह मान कर एकान्तमत स्वीकार करो। इसमें ही आपका हित है। यदि आप एकान्तमत को स्वीकार नहीं करोगी, तो आप पर भयंकर आफत आ पड़ेगी।

चेलना– (क्रोध से) क्या आप मुझको भय दिखाकर मेरा धर्म छुड़ाना चाहते हो ? ऐसी तुच्छबुद्धि आप कहाँ से लाये ? जैनधर्म के भक्त कैसे निःशंक और निर्भय होते हैं —इसका तो अभी आपको ज्ञान ही नहीं है। (शांत भाव से) जरा सुनो ! जैनधर्म के भक्त को जगत का कोई लोभ और जगत की कोई प्रतिकूलता भी धर्म से नहीं डिगा सकती है। वीतरागी जैनधर्म के भक्त सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे निःशंक और निर्भय होते हैं कि तीनलोक में खलबली मच जाए, ऐसा भंयकर वज्रपात हो तो भी अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते ।

ए०गुरु– (तेज स्वर में) सुन लो, महारानीजी ! आपको क्षणिकवाद अंगीकार करना ही पड़ेगा, नहीं तो हम महाराज के कान भरेंगे और आपको अपमानित होकर यह राजपाट भी छोड़ना पड़ेगा, इसलिए आप अभी भी मान जाओ और एकान्तमत को स्वीकार कर लो।

चेलना– मेरे जैनधर्म के समक्ष मुझको जगत के किसी मान-अपमान की चिन्ता नहीं। लाखों-करोड़ों प्रतिकूलताओं का भय दिखाकर भी आप मुझे मेरे धर्म से नहीं डिगा सकते । हमारे धर्म में हम निःशंक हैं और जगत में निर्भय हैं, सुनो–

निःशंक हैं सद्दृष्टि बस, इसलिए ही निर्भय रहें।
वे सप्तभय से मुक्त हैं, इसलिए ही निःशंक हैं।।

अभय– और सुनो–

चाहे विविध बीमारियाँ, निजदेह में आकर बसें।
चाहे हमारी सम्पदा, इस वक्त ही जाती रहे।।
चाहे सगे सम्बन्धी परिजन, का वियोग मुझे बने।
चाहे दुश्मन हमको घेरे, ब्रह्माण्ड सारा हिल उठे।।
तो भी अरे जिनधर्म को, क्षण एक भी छोड़ूँ नहीं।
प्रतिकूलता आती रहें, निज रमणता छोड़ूँ नहीं।।

जगत की चाहे जितनी प्रतिकूलता आ जावे तो भी हम जैनधर्म से रंचमात्र भी डिगने वाले नहीं हैं, तो तुम्हारे जैसों कि क्या ताकत है कि जो हमको डिगा सको?

ए०गुरु– (सरलता से) महारानीजी ! आप भले ही अंतरंग में जैनधर्म की श्रद्धा रखना, पर बाहर में एकान्तमत स्वीकार कर हमको सत्कार दो, जिससे हम एकान्तमत का प्रचार कर सकें।

चेलना– (तेज स्वर में) महाराज ! अब अपनी बात बन्द करो। जैनधर्म को छोड़ने के सम्बन्ध में अब आप एक शब्द भी मत कहना। अब आपको ही क्षणिकवाद छोड़कर स्याद्वाद की शरण में आना ही पड़ेगा। अभी तक तो आपकी बात चली, परन्तु अब हमारे राज्य में यह नहीं चलेगा।

ए०गुरु का शिष्य– अरे चेलना ! हमारे एकान्ती गुरु तो सर्वज्ञ हैं, इनका आप अपमान कर रही हो।

अभय– ठीक महाराज ! आप कैसे सर्वज्ञ हो –इसका अन्दाज तो हमें अभी-अभी हो गया है, जब हमारी बहन के एक मामूली से प्रश्न का उत्तर भी आप सही नही दे पाये खैर........अब चर्चा बन्द करो आप, और शान्ति से पधारो।

ए०गुरु– ठीक है ! अभी तो जाते हैं, पर समय आने पर आपको मालूम पड़ेगा कि एकान्ती गुरुओं का सामर्थ्य कितना है।

(एकान्ती चलना आरम्भ करते हैं।)

(मोचड़ी पहनने जाते हैं। वहाँ नहीं मिलती है, तब दोनों मोचड़ी खोजते हैं। एक-एक मोचड़ी गुम गई है। दोनों एक-एक मोचड़ी लेकर, दूसरी मोचड़ी खोज रहे हैं।)

ए०गुरु– अरे, मेरी एक मोचड़ी गुम गई !

ए०गुरु का शिष्य– मेरी भी एक मोचड़ी नहीं दिखती।

ए०गुरु– हमारी मोचड़ी कहाँ गई ?

ए०गुरु का शिष्य– मोचड़ी कौन उठा ले गया ? मोचड़ी, मोचड़ी!

(पीछे से अभयकुमार और चेलना आते हैं।)

अभय– क्या है महाराज ?

ए०गुरु– कुमार! हमारी एक-एक मोचड़ी कोई उठा ले गया है।

चेलना– क्या आपकी मोचड़ी कोई उठा ले गया है?

ए०गुरु– हाँ, हमारी मोचड़ी कोई उठा ले गया है।

चेलना– (जोर से) अरे सैनिको !

(दो सैनिकों का प्रवेश)

सैनिक– (विनय से) आज्ञा, महारानीजी !

चेलना– इन एकान्ती गुरुओं की यहाँ से कोई एक-एक मोचड़ी उठा ले गया है, तुम अतिशीघ्र मोचड़ी की खोज करके लाओ।

सैनिक– जो आज्ञा ।

(सैनिक एकान्ती गुरुओं की मोचड़ियों की खोज करने जाते हैं। चेलना, अभय और एकान्ती गुरु-शिष्य वही खड़े रहते हैं। कुछ क्षणों में सैनिक पुन: आ जाते हैं)।

सैनिक– महारानीजी ! सब जगह खोज की, पर मोचड़ियों का कहीं पता नहीं लग सका।

ए०गुरु– (खिन्नता से) फिर यहाँ से मोचड़ी गई कहाँ ? यदि यहाँ से कोई उठा कर नहीं ले गया तो क्या धरती निगल गई?

चेलना– (व्यंग्य से) हे महाराज ! अभी कुछ देर पहले आप ही कह रहे थे कि हम सर्वज्ञ हैं; फिर आप अपने ज्ञान से ही क्यों नहीं जान लेते कि आपकी मोचड़ी कहाँ गई ?

(एकान्ती गुरु-शिष्य यह सुनकर क्षुब्ध हो जाते हैं।)

ए०गुरु– (खेद से) यह तो हम नहीं जान सकते।

अभय– (व्यंग्य से) देखो, महाराज ! स्थूल वस्तु को भी आप नहीं जान सकते तो सर्वज्ञ होने का दावा किसलिए करते हो ?

ए०गुरु– जरूर मोचड़ी तुम्हीं में से किसी ने छिपाई हैं।

ए०गुरु का शिष्य– महारानीजी ! आपने दगा कर हमारा ऐसा अपमान किया है।

चेलना– नहीं नहीं महाराज ! आपके अपमान के लिए हमने कुछ भी नहीं किया है, परन्तु हमने तो आपकी सर्वज्ञता की परीक्षा करके आपको बताया कि सर्वज्ञता के नाम से आप कैसे भ्रम का सेवन कर रहे हो।

अभय– (व्यंग्य से) हाँ, और अब आपके भक्त मेरे पिताजी को भी मालूम पड़ेगा कि आप उनके कैसे गुरु हैं?

ए०गुरु– (क्रोध से) महारानी ! घर पर बुलाकर आपने हमारा अपमान किया है, परन्तु याद रखना कि हम भी हमारे अपमान का बदला लेकर रहेंगे।

(एकान्ती गुरु-शिष्य आपे से बाहर होकर तेजी से श्रेणिक के पास जाने के लिए श्रेणिक के कक्ष में चले जाते हैं।)

श्रेणिक– (खड़े होकर) पधारो महाराज ! भोजन कर आए ?

एकान्ती– हाँ राजन् !

श्रेणिक– महाराज ! भोजन के बाद आपने चेलना को एकान्त धर्म का क्या उपदेश दिया ?

एकान्ती– राजन् ! चेलना रानी को एकान्त धर्म स्वीकार कराने के लिए हमने बहुत कुछ कहा और धमकियाँ भी दीं, परन्तु वह जैन धर्म की हठ जरा भी नहीं छोड़ती । वहाँ तो उलटा हमारा ही आपमान हुआ।

श्रेणिक– क्या ? अपमान हुआ, महाराज ?

एकान्ती– राजन् ! हमारी ही मोचड़ी छुपा कर हमको ही अज्ञानी ठहरा दिया।

श्रेणिक– आपको अपनी मोचड़ी का ध्यान क्यों नहीं आया ?

एकान्ती– भोजन के स्वाद में इसका ख्याल ही नहीं रहा। रानी चेलना ने हमारी सर्वज्ञता की परीक्षा कर हमको झूठा ठहराया और भयंकर अपमान कर निकाल दिया।

श्रेणिक– महाराज ! समय आने पर मैं भी चेलना के गुरु का अपमान कर इसका बदला लूँगा।

एकान्ती– हाँ राजन् ! यदि तुम एकान्त धर्म के सच्चे भक्त हो तो जरूर ऐसा करना।

श्रेणिक– (दृढ़ता से) जरूर करूँगा।

एकान्ती गुरु-शिष्य झुंझलाते हुए अपने मठ में चले जाते हैं।

चतुर्थ दृश्य

श्रेणिक द्वारा मुनिराज पर उपसर्ग एवं सातवें नरक का आयुबंध

(राजा श्रेणिक राज भवन में अपने सामन्तों के साथ बैठे हैं। वहाँ दो सैनिक प्रवेश करते हैं। दोनों की वेशभूषा अलग-अलग है।)

श्रेणिक– चलो सामन्तो ! आज तो शिकार करने चलें।

(तीनों जाते हैं। श्रेणिक एकटक दूर से परदे की ओर देख रहे हैं। तभी परदे के अन्दर हल्की लाइट जलती है, मुनिराज (चित्र) दिखाई देते हैं।)

श्रेणिक– अरे, वहाँ दूर-दूर क्या दिख रहा है ? क्या कोई शिकार हाथ में आया ?

सैनिक– जी हाँ महाराज ! यह कोई शिकार लगता है।

सैनिक– (ध्यान से देखकर) नहीं महाराज ! यह तो कोई मनुष्य लगता है और उसके आस-पास तेजोमय प्रभामण्डल भी दिख रहा है, इसलिए यह जरूर कोई महापुरुष होंगे।

श्रेणिक– चलो, नजदीक जाकर मालूम करें।

सैनिक– महाराज ! वहाँ तो कोई ध्यान में बैठा है।

सैनिक– (प्रसन्नता से) ये तो जैन मुनि हैं। अहा ! देखो तो सही, इनकी मुद्रा कितनी शान्त है ! मानो भगवान बैठे हों— वैसे ही लगते हैं।

श्रेणिक– अरे! क्या जैनमुनि? चेलना के गुरु?

श्रेणिक– (क्रोध से) बस,

आज तो मैं मेरे बैर का बदला ले ही लूँगा। चेलना रानी ने मेरे गुरुओं का अपमान किया था, अब आज मैं उसके गुरु का अपमान करके बदला लूँगा।

सैनिक– राजन् ! राजन् !! आपको यह नहीं शोभता । मुनिराज कैसे शान्त और वीतरागी हैं ! इन पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

श्रेणिक– नहीं, नहीं, मैं तो अपने गुरु के अपमान का बदला लूँगा ही, तब ही मुझे चैन पड़ेगा। जाओ सैनिक ! इनके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़ दो।

सैनिक– महाराज ! ऐसा पाप कार्य आपको शोभा नहीं देता।

श्रेणिक– (क्रोध से) मुझे शोभे या न शोभे, उसकी चिंता तुम मत करो, तुम आज्ञा का पालन करो।

(सैनिक कुत्ते छोड़ देता है; परन्तु कुत्ते शान्त होकर मुनिराज के चरणों में बैठ जाते हैं।)

सैनिक– महाराज ! मुनिराज पर जो कुत्ते छोड़े थे वे तो मुनिराज को कुछ किए बिना ही शान्त होकर उनके पास में बैठ गए। अब क्या करना है?

सैनिक– (दु:खी होकर) राजन् ! अब भी चेतो; अरे, जिनकी शान्त मुद्रा देखकर कुत्ते जैसे जानवर भी शान्त और नम्र हो गए, ऐसे मुनिराज पर क्रोध करना आपको उचित नहीं।

श्रेणिक– नहीं, नहीं, ये तो कोई जादूगर हैं, उस जादू के मंत्र से कुत्तों को शान्त कर दिया है, परन्तु मैं आज बदला लिए बिना नहीं रहूँगा। (कुछ क्षण रुककर, इधर-उधर देखकर पुनः कहता है।) सैनिको! देखो, वह भयंकर मरा हुआ काला नाग यहाँ लाओ और इस मुनि के गले में पहना दो। (प्रथम सैनिक सर्प लाकर श्रेणिक को देता है।)

श्रेणिक– लाओ ! (वह सर्प लेकर मुनिराज के गले में डाल

देता है और अत्यन्त हास्य करता है। हा...हा.....हा.....हा....। इस प्रसंग से दूसरा सैनिक बेभान जैसा होकर नीचे बैठ जाता है।)

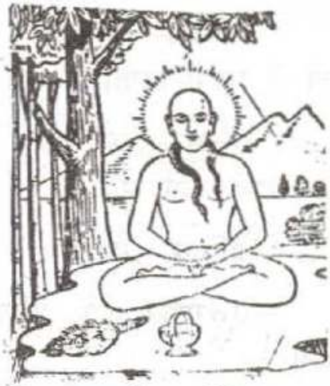

श्रेणिक– बस ! मेरे गुरु के अपमान का बदला मिल चुका। चलो सैनिको, यह समाचार मुझे अपने गुरुओं को भी देना है।

(तभी परदे में से; अरे....रे....रे...! धिक्कार ! धिक्कार !! धिक्कार !!! परम वीतरागी जैनमुनि पर घोर उपसर्ग कर श्रेणिक राजा ने सातवें नरक का घोर पापकर्म बाँधा है।

—यह सुनकर श्रेणिक कुछ क्षुब्ध होता है, फिर भी श्रेणिक एवं प्रथम सैनिक वहाँ से एकान्ती गुरु को यह समाचार देने के लिए उनके मठ की ओर चले जाते हैं; परन्तु दूसरा सैनिक वहीं बैठा रहता है।)

(एकान्ती गुरु मठ में बैठे हैं। राजा श्रेणिक आकर वंदन करते हैं।)

ए०गुरु– क्यों महाराज ! क्या कोई खुशी के समाचार लाए हो, जो इतने हर्षित नजर आ रहे हो ?

श्रेणिक– (हर्ष से) हाँ महाराज ! मैं आज जंगल में शिकार करने गया था, वहाँ मैंने एक जैन मुनिराज को देखा।

ए०गुरु– ऐसा ? फिर क्या हुआ?

श्रेणिक– फिर तो मैंने उनसे आपके अपमान का बदला लिया।

ए०गुरु– किस तरीके से? क्या तुमने वाद-विवाद करके उन्हें हरा दिया।

श्रेणिक– नहीं महाराज ! वाद-विवाद में जैनमुनियों को हराना सरल नहीं है ? मैंने तो उनके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़े; परन्तु कौन जाने, वे कुत्ते भी शान्त होकर वहीं क्यों बैठ गए।

ए०गुरु– ऐसा ? फिर क्या हुआ ?

श्रेणिक– महाराज ! फिर तो मैंने एक बड़ा सर्प लेकर उनके गले में पहना दिया।

ए०गुरु– अरे राजन् ! तुमने यह क्या किया ? ऐसा अयोग्य कृत्य तुम्हें कैसे सूझा ?

श्रेणिक– महाराज ! मैंने आपके अपमान का बदला लिया है।

ए०गुरु– नहीं, श्रेणिक ! इस तरीके से बदला नहीं लिया जाता।

ए०गुरु का शिष्य– जो हो गया वो तो हो ही गया। अब यह समाचार चेलना रानी को तुरन्त बता देना, इसलिए कि उसको भी मालूम हो जाए कि एकान्ती गुरुओं का अपमान करना सरल बात नहीं है।

श्रेणिक– हाँ महाराज ! मैं वहाँ ही जा रहा हूँ।

(महारानी चेलना चिंता में बैठी हैं। अभयकुमार आते हैं।)

अभय– प्रणाम माताजी ! किस चिंता में डूबी हो ?

चेलना– पुत्र ! आज मुझे अनेक प्रकार के बुरे-बुरे ख्याल आ रहे हैं, ऐसा लगता है जैसे कहीं जैनधर्म पर महासंकट आया हो। पुत्र! मेरे हृदय में बहुत व्याकुलता हो रही है।

अभय– माता ! चिंता न करो। जैनधर्म के प्रताप से सर्व मंगल ही होगा, वहाँ सर्व संकट टलकर जरूर धर्म की महाप्रभावना होगी।

चेलना– पुत्र ! सुनसान राज्य में मेरे साधर्मी रूप में एक तू ही है। मेरे हृदय की व्यथा मैं तेरे सिवाय किसको कहूँ ? भाई ! आज सुबह से ही महाराज भी नहीं आये, पता नहीं कौन जाने क्या खटपट चलती होगी?

अभय– माता ! आज तो महाराज शिकार खेलने गये थे, और

जब वहाँ से वापस आये, तब सीधे एकान्त गुरुओं के पास में जाकर महाराज ने उनसे कुछ बात कही थी और उसको सुनकर एकान्त गुरु हर्षित थे।

चेलना– हाँ पुत्र ! जरूर इसमें ही कुछ रहस्य होगा। अपने गुप्तचरों को अभी इसकी जानकारी करने भेजो।

अभय– हाँ माता ! अभी भेजता हूँ। (कुछ दूर जाकर गुप्तचरों को आवाज देता है।) गुप्तचरो ! गुप्तचरो !!

(दो गुप्तचरों का प्रवेश)

गुप्तचर– जी हजूर !

अभय– तुम अभी जाओ और नई पुरानी कुछ विशेष बात हो तो मालूम करो और उसकी सूचना हमें दो।

गुप्तचर– जैसी आज्ञा। (गुप्तचर चले जाते हैं।)

अभय– माता ! खबर करने के लिए गुप्तचर भेज दिए हैं। उनके समाचार आवें, तबतक इस प्रकार उदास बैठे रहने से तो अच्छा है– हम कुछ धार्मिक चर्चा करें जिससे मन में प्रसन्नता हो।

चेलना– हाँ पुत्र ! तेरी बात सत्य है। ऐसे दुःख संकट में धर्म ही शरण है।

अभय– माता ! आप जैसी धर्मात्माओं पर भी संकट क्यों आते हैं?

चेलना– पुत्र, पूर्व में जिसने देव-गुरु-धर्म की कोई विराधना की हो, उसी कारण उसे ऐसी प्रतिकूलता के प्रसंग आते हैं।

अभय– हे माता! प्रतिकूल संयोगों में भी क्या जीव धर्म कर सकता है ?

चेलना– हाँ पुत्र ! कैसे भी प्रतिकूल संयोग हों, जीव धर्म कर सकता है, धर्म करने में बाहर के कोई भी संयोग जीव को बाधक नहीं होते।

अभय– पर अनुकूल संयोग हो तो धर्म करने में वह कुछ मदद तो कर सकता है न?

चेलना– नहीं पुत्र ! धर्म तो आत्मा के आधार से है। संयोग के आधार से धर्म नहीं। संयोग का तो आत्मा में अभाव है।

अभय– फिर बाहर में अनुकूल और प्रतिकूल संयोग क्यों मिलते हैं?

चेलना– यह तो पूर्व भव में जैसे पुण्य-पाप भाव जीव ने किए हों वैसे संयोग अभी मिलते हैं। पुण्य के फल में अनुकूल संयोग मिलते हैं। पाप के फल में प्रतिकूल संयोग मिलते हैं, परन्तु धर्म तो दोनों से भिन्न वस्तु है।

अभय– माताजी ! इस विचित्र संसार में कोई अधर्मी जीव भी सुखी दिखता है और कोई धर्मी जीव भी दुःखी दिखता है। इसका क्या कारण है?

चेलना– पुत्र ! अज्ञानी जीव को सच्चा सुख होता ही नहीं। आत्मा का अतीन्द्रिय सुख ही सच्चा सुख है। और वह ज्ञानी के ही होता है, अज्ञानी के तो उसकी गंध भी नहीं होती। अधर्मी जीवों के जो सुख दिखता है, वह वास्तव में सुख नहीं, मात्र कल्पना है, सुखाभास है। अज्ञानी के पूर्व पुण्य के उदय से बाह्य अनुकूलता हो तो भी वह वास्तव में दुःखी ही है। ज्ञानी के कदाचित् पाप के उदय से बाह्य में प्रतिकूलता दिखती हो तो भी वह वास्तव में सुखी ही है।

अभय– क्या प्रतिकूलता में ज्ञानी की श्रद्धा डिग नहीं जाती होगी ?

चेलना– नहीं पुत्र! बिल्कुल नहीं, बाहर में कैसी भी प्रतिकूलता हो तो भी समकिती धर्मात्मा के सम्यक्-श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान जरा भी दूषित नहीं होता। अरे ! तीनलोक में खलबली मच जाए तो भी समकिती अपने स्वरूप की श्रद्धा से जरा भी नहीं डिगते।

अभय– अहो माता ! धन्य हैं ऐसे समकिती सन्तों को ! ऐसे सुखी समकिती का अतीन्द्रिय आनन्द कैसा होगा ?

चेलना– अहो, पुत्र अभय ! वह समस्त इन्द्रिय सुखों से विलक्षण जाति का आनन्द होता है। जैसा सिद्ध भगवान का आनन्द, जैसा वीतरागी मुनिवरों का आनन्द, वैसा ही समकिती का आनन्द है। सिद्ध भगवान के समान आनन्द का स्वाद समकिती ने चख लिया है।

अभय– माता ! इस सम्यग्दर्शन के लिए कैसा प्रयत्न होता है, वह मुझे भी विस्तार से समझाओ।

चेलना– तूने बहुत सुन्दर और अच्छा प्रश्न पूछा। सुन, पहले तो अन्तर में आत्मा की इतनी रुचि जागे कि आत्मा की बात के अलावा उसे दूसरी किसी भी बात में रुचि न लगे और सद्गुरु का समागम करके तत्त्व का बराबर निर्णय करे, बाद में दिन-रात अन्तर में गहरा-गहरा मंथन करके भेदज्ञान का अभ्यास करे। बार-बार इस भेदज्ञान का अभ्यास करते-करते जब हृदय में उत्कृष्ट आत्म-स्वभाव की महिमा आये तब उसका निर्विकल्प अनुभव होता है, वेदन होता है। पुत्र ! सम्यग्दर्शन प्रकट करने के लिए ऐसा प्रयत्न होता है। इसकी महिमा अपार है।

अभय– अहो माता ! सम्यग्दर्शन की महिमा समझाने की तो आपने महान कृपा की है। अब इसकी भावना जगाने वाला कोई प्रेरक भजन भी सुनाओ न।

चेलना– जरूर बेटा? तुम भी मेरे साथ दुहराना।

अभय– जी माता ! आप शुरु कीजिये।

(दोनों भजन गाते हैं)

धिक! धिक!! जीवन समकित बिना।
दान शील तप व्रत श्रुत पूजा, आतमहित न एक गिना।।टेक।।

ज्यों बिनु कंत कामिनी शोभा, अंबुज बिनु सरवर सूना।
जैसे बिना एकड़े बिंदी, त्यों समकित बिनु सरब गुना।।२।।

जैसे भूप बिना सब सेना, नीव बिना मन्दिर चुनना।
जैसे चंद विहूनी रजनी, इन्हें आदि जानो निपुना।।३।।

देव-जिनेन्द्र साधु-गुरु करुणा-धर्म-राग व्योहार भना।
निहचै देव धरम-गुरु आतम, 'द्यानत' गहि मन-वचन-तना।।४।।

(भजन पूरा होने पर कुछ क्षण उसपर विचार करते हैं। फिर...)

चेलना– बेटा अभय ! अभी तक कोई समाचार नहीं आए?

अभय– (बाहर की ओर झांकते हुए) माता, एक गुप्तचर आ रहा हैं।

पंचम दृश्य

उपसर्ग-विजयी मुनिराज का उपसर्ग दूर एवं राजा श्रेणिक द्वारा जैनधर्म अंगीकार

(गुप्तचर आते हैं।)

गुप्तचर– (खेद से) माता-माता! एक गम्भीर घटना घट गई है– उसके समाचार देने के लिए महाराजजी स्वयं ही आ रहे हैं।

(श्रेणिक राजा का प्रवेश)

चेलना– पधारो महाराज ! क्या बात है? आज...?

श्रेणिक– हाँ देवी! आज मैं जंगल शिकार करने गया था। वहाँ एक विचित्र-सा बनाव बन गया।

चेलना– क्या बात है महाराज ? जल्दी कहो।

श्रेणिक– वहाँ जंगल में हमने एक जैनमुनि को देखा।

चेलना– (प्रसन्नता से) ऐसा ? मेरे गुरु के दर्शन हुए, वाह! बाद में क्या हुआ ?

श्रेणिक– बाद में तो जैसे आपने मेरे गुरु का अपमान किया, वैसे ही मैंने भी तुम्हारे गुरु का अपमान कर बदला ले लिया।

चेलना– (दु:खी होकर) अरेरे, आपने ये क्या किया महाराज?

श्रेणिक– सुनो देवी ! पहले तो हमने उनके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़े, पर वे कुत्ते तो उनको देखते ही एकदम शान्त हो गए।

चेलना– (हर्ष से) वाह, धन्य मेरे गुरु का प्रभाव ! धन्य वे वीतरागी मुनिराज !!

श्रेणिक– चेलना ! पूरी बात तो सुनो। बाद में तो मैंने एक भयंकर काला नाग लेकर तुम्हारे गुरु के गले में डाल दिया।

चेलना– हैं ? क्या ? मेरे गुरु के गले में आपने नाग डाला ? अरेरे...! धिक्कार है तुम्हें, धिक्कार इस संसार को। अरेरे...! इससे तो मैंने कुँवारी रहकर दीक्षा ले ली होती तो अच्छा रहता। अरे राजन् ! आपने यह क्या किया ?

अभय– धैर्य रखो, माता ! अब हमें शीघ्र ही कोई उपाय करना चाहिए।

चेलना– अरे भाई ! अपने गुरु के ऊपर घोर उपसर्ग आया, ऐसी रात्रि में हम क्या करेंगे?

जंगल में कहाँ जाएँगे? मुनिराज को कहाँ खोजेंगे? अरे, उन मुनिराज का क्या हुआ होगा? हे भगवान् !....(कहते-कहते बेहोश हो जाती है।)

अभय– (अतिशीघ्रता से) माता ! उठो, उठो !! ऐसे गंभीर प्रसंग में आप धैर्य खोओगी, तो मैं क्या करूँगा ? हे माता! चेतो!! हम जल्दी ही कोई उपाय करते हैं।

(महारानी चेलना को हाथ पकड़कर उठाता है।)

चेलना– चलो बेटा चलो, हम अभी जंगल में जाकर मुनिराज के उपसर्ग को दूर करेंगे।

श्रेणिक– देवी ! आप शोक मत करो। आपके गुरु तो कभी के सर्प को दूर फैंककर चले गए होंगे।

चेलना– नहीं-नहीं राजन् ! यह तो आपका भ्रम है। कैसा भी भयंकर उपद्रव हो जाए तो भी हमारे जैनमुनि ध्यान से चलायमान नहीं होते। यदि वे सच्चे मुनिराज होंगे तो अभी भी वे वहीं वैसे ही विराज रहे होंगे। वे चैतन्य के ध्यान में अचल मेरु पर्वत समान बैठे होंगे।

अभय– माता ! माता ! अब जल्दी चलो। अपने गुरु का क्या हुआ होगा? अरे ! ऐसे शान्त मुनिराज को हम सब देखेंगे?

चेलना– चलो पुत्र ! इसी वक्त हम उनके पास जाएँ और उनका उपसर्ग दूर करें।

(वे चलना प्रारम्भ करते हैं और श्रेणिक रोकता है।)

श्रेणिक– अरे ! ऐसी रात्रि में तुम जंगल में कहाँ जाओगी, अपन सुबह चलकर मालूम कर लेंगे, मैं भी आपके साथ चलूँगा।

चेलना– नहीं राजन् अब हम एक क्षण भी नहीं रुक सकते। अरेरे...! आपने भारी अनर्थ किया है। महाराज ! हम अभी इसी समय जंगल में जाएँगे और मुनिराज को खोज कर उनका उपसर्ग दूर करेंगे। मुनिराज का उपसर्ग दूर न हो तबतक हमको चैन नहीं पड़ेगी, इससे हमने प्रतिज्ञा की है कि जबतक हमको उन मुनिराज के दर्शन न हों और उनका उपसर्ग दूर न हो तबतक हमारे सर्व प्रकार अन्न-पानी का त्याग है। (कुछ रुककर अभयकुमार की ओर देखते हुऐ) पुत्र! चलो। (चलना पुनः प्रारम्भ करते हैं।)

श्रेणिक– खड़ी रहो देवी ! मैं भी आपके साथ आता हूँ और आपको मुनिराज का स्थान बताता हूँ।

अभय– बहुत अच्छा, पिताजी ! चलो।

(सभी लाइटें बंद कर दी जाती हैं। सब हाथ में टार्च लेकर चलते हैं। अन्दर जाकर परदे की दूसरी तरफ से मुनिराज को खोजते-खोजते बाहर आते हैं। तथा मंद-मंद ध्वनि से निम्न गीत गुन-गुनाते हैं। फिर धीरे-धीरे प्रकाश होता है अर्थात् सबेरा हो जाता है और मुनिराज (चित्र) दिखते हैं।)

चेलना– अरे देखो, देखो ! मुनिराज तो ऐसे के ऐसे ध्यान में विराज रहे हैं।

अभय– जय हो ! यशोधर मुनिराज की जय हो !!

चेलना– कुमार ! चलो, सर्प को शीघ्र ही दूर करें।

(श्रेणिक हाथ जोड़कर खड़े-खड़े देख रहे हैं। चेलना तथा अभय दोनों लकड़ी से सर्प को दूर कर रहे हैं।)

अभय– अहा मुनिराज ! धन्य है आपकी वीतरागता !!

चेलना– पुत्र ! चलो, अब मुनिराज के शरीर को साफ करें।

(पीछी से शरीर को साफ करते हैं। बाद में वंदन करके बैठ जाते हैं। श्रेणिक एक तरफ स्तब्ध से खड़े हैं।)

चेलना– बैठो महाराज ! मुनिराज तो अभी ध्यान में हैं। अभी उनका ध्यान पूरा होगा। (श्रेणिक बैठ जाते हैं।)

चेलना– (अभयकुमार से) हम मुनिराज की भक्ति करें।

अभय– जरूर माता ! (भक्ति प्रारम्भ कर देते हैं।)

ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं तन में।।टेक।।
ग्रीषम ऋतु शिखर के ऊपर, मगन रहे ध्यानन में।।१।।
चातुर्मास तरूतल ठाड़े, बूँद सहे छिन-छिन में।।२।।

शीत मास दरिया के किनारे, धीर धरें ध्यानन में।।३।।
ऐसे गुरु को मैं नित प्रति ध्याऊँ, देत ढ़ोक चरनन में।।४।।

चेलना– (हाथ जोड़ कर गद्‌गद भाव से) हे प्रभो ! अब उपसर्ग सर्व प्रकार से दूर हुआ है। प्रभो ! अब ध्यान छोड़ो, हमारे ऊपर कृपादृष्टि करो। प्रभो ! हम बालकों पर कृपा करो।

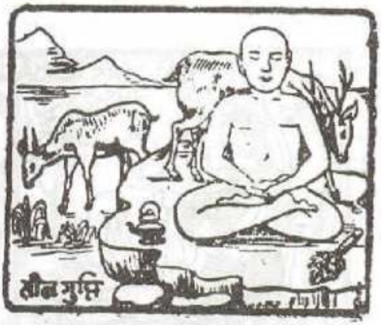

मुनिराज– धर्मवृद्धिरस्तु! आप सबको धर्मवृद्धि हो।

(मुनिराज के ये शब्द परदे में से आते हैं।)

श्रेणिक– अरे, क्या मुनिराज ने मुझको भी धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया ?

चेलना– हाँ महाराज ! जैनमुनि तो वीतरागी होते हैं। उनके शत्रु और मित्र के प्रति समभाव होता है। चाहे कोई पूजा करे, चाहे निंदा करे तो भी उनके प्रति समभाव है। चाहे हीरों का हार, चाहे फणीधर नाग, इन दोनों में भी उनको समभाव होता है। अहो ! यही तो है इन मुनिवरों की महानता।

अरि-मित्र महल-मशान, कंचन-काँच निन्दन-थुति करन।
अर्घावतारण असिप्रहारण, में सदा समता धरन।।

× × ×

शत्रु मित्र प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते वही स्वभाव जो।
जीवित के मरणे नहिं न्यूनाधीकता;
भव मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो।।

श्रेणिक– अहो देवी ! धन्य है इन मुनिराज को। वास्तव में जैन मुनियों के समान जगत में दूसरा कोई नहीं। अरे रे ! मुझ पापी ने यह कैसा महा भयंकर अपराध किया ?

चेलना– नाथ ! आपने कैसा भी उपसर्ग किया, पर ये वीतरागी मुनिराज तो स्वयं के क्षमा धर्म में अडिग ही रहे हैं और आपके ऊपर भी करुणा दृष्टि रखकर आपको धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया है। प्रभो! वीतरागी मुनिवरों का यह जैनधर्म ही उत्तम है। आप इस धर्म की शरण ग्रहण करो। जैनधर्म की शरण से कैसे भी भयंकर पापों का नाश हो जाता है।

अभय– पिताजी ! अब अन्तर की उमंग से जैनधर्म को स्वीकार करो और सर्व पापों का प्रायश्चित्त कर लो। चेलना माता के प्रताप से आपने यह धन्य अवसर पाया है।

श्रेणिक– (गद्‌गद होकर) प्रभो ! प्रभो ! मेरे अंपराध क्षमा करो प्रभो! इस पापी का उद्धार करो। अरे रे ! जैनधर्म की विराधना करके मैंने भयंकर अपराध किया, इस पाप से मैं कब छूटूँगा। प्रभो ! मुझको शरण दो !! मैं अब जैनधर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।

मुझको अरिहंत भगवान की शरण हो।
मुझको सिद्ध भगवान की शरण हो।
मुझको जैन मुनिवरों की शरण हो।
मुझको जैनधर्म की शरण हो।

× × ×

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी।
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।
धन घड़ी यो धन दिवस यो, ही धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो।

मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, विनवूँ तव चरण जी।
करना क्षमा मुझ अधम को, तुम सुनो तारनतरन जी।

हे नाथ ! मैं मन से, वचन से, काया से, सर्व प्रकार से, आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में पवित्र जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ। प्रभो ! मेरे अपराध क्षमा करो।

मुनिराज– हे राजन् ! जैनधर्म के प्रताप से तुम्हारा कल्याण हो, धर्म की वृद्धि हो। परिणाम का पलटना यही सच्चा प्रायश्चित्त है। राजन् ! तुम्हारा धन्य भाग्य है जो कि ऐसे परम पावन जैनधर्म की प्राप्ति हुई। अब सर्व प्रकार से उसकी आराधना और प्रभावना करना।

श्रेणिक– प्रभो ! आपने मेरा उद्धार किया है, आज मेरा नया जन्म हुआ है। नाथ ! अब मेरे सम्पूर्ण राज्य में जैनधर्म का ही झंडा फहरायेगा, जगह-जगह जिनमन्दिर होंगे, इस महान जैनधर्म को छोड़कर दूसरे किसी अन्य धर्म का मैं स्वप्न में भी आदर नहीं करूँगा।

चेलना– (हर्ष से) प्रभो ! आज हमारे आनन्द का पार नहीं। आपके प्रताप से जैनधर्म की जय हुई है। प्रभो ! मुझको यह बतावें कि श्रेणिक महाराज की मुक्ति कब होगी ?

मुनिराज– तुमने उत्तम प्रश्न पूछा है। सुनो ! कुछ ही समय बाद इस राजगृही नगरी में त्रिलोकीनाथ महावीर भगवान पधारेंगे, उस समय प्रभुजी के चरण-कमल में श्रेणिक महाराज क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट करेंगे। इतना ही नहीं तीर्थंकर भगवान के चरणकमल में उन्हें तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध होगा। और वे आने वाली चौबीसी में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष पायेंगे।

चेलना– अहो नाथ ! आपके श्रीमुख से मंगल बात जान कर हमारा आत्मा हर्ष से नाच उठा है।

श्रेणिक– धन्य प्रभो ! आपके श्रीमुख से मेरे मोक्ष की बात सुन कर मेरा आत्मा आनन्द से उछल गया है। प्रभो ! मानो मेरे हाथ में मोक्ष आ गया हो—ऐसा मुझको आनन्द होता है।

अभय– माता ! अन्त में आपकी भावना सफल हुई और जैनधर्म की जय हुई, जिससे मुझको अपार आनन्द हुआ है।

(जब दीवानजी ने यह समाचार सुना कि महाराज और महारानी आदि जंगल में गये हैं। तब वे भी जंगल की ओर चल दिये और वहाँ पहुच गये, जहाँ सभी बैठे हुए थे।)

चेलना– लो दीवानजी ! कोई मंगल समाचार लेकर आये हैं।

दीवानजी– नमोऽस्तु गुरुवर ! महाराज और महारानी को भी मेरा प्रणाम। मैं एक अतिशुभ समाचार लेकर आया हूँ महारानीजी !

चेलना– कहो, क्या शुभ समाचार लाए हो ? क्या मन्दिर बनकर तैयार हो गया है ?

दीवानजी– जी महारानीजी ! आपकी आज्ञा के अनुसार भव्य जिनमन्दिर बनकर तैयार हो गया है। अपने राज्य में जितने मन्दिर हैं, उन सबमें यह जिनमन्दिर उत्तम है। इसको बनाने में एक करोड़ सोने की मोहरें खर्च हुई हैं। अब उसके प्रतिष्ठा महोत्सव की तैयारी करनी है।

श्रेणिक– दीवानजी ! आज से ही महोत्सव की तैयारी करो, सम्पूर्ण नगरी को सुन्दर बनाओ और जिनमन्दिर पर सोने के कलश चढ़ाओ, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा का महोत्सव ऐसा धूमधाम से होना चाहिए कि सम्पूर्ण नगरी जैनधर्म की प्रभावना से आनन्दित हो उठे, राज्य भंडार में धन की कोई कमी नहीं है। इस महोत्सव में जितना चाहो उतना खर्च करो, परन्तु पंचकल्याणक महोत्सव एकदम अपूर्व होना चाहिए। अपना कैसा धन्य भाग्य है कि पंचकल्याणक महोत्सव के उत्तम प्रसंग में अपने आँगन में मुनिराज भी विराज रहे हैं।

चेलना– महाराज ! धन्य है आपकी भावना चलो हम भी महोत्सव की तैयारी करें।

अभय– ठहरिये, हम भक्ति कर लें।

सन्मार्गदर्शी बोधिदाता, कृपा अति बरसावते।
आश्रयी करुणाभाव से, मुझ रंक को उद्धारते।।

विमल ज्ञानी शांतमूर्ति, दिव्यगुण से दीप्त हो।
मुनिवर चरण में नम्रता से, कोटिशः मम शीस हो॥

चेलना– बोलो, श्री यशोधर मुनिराज की जय !
श्रेणिक– बोलो, परम-पवित्र जैनधर्म की जय !

षष्टम् दृश्य

श्रेणिक द्वारा जैनधर्म की विजय घोषणा

(बडे ही धूमधाम से पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न होता है. और जैनधर्म की विशाल रथयात्रा निकाली जाती है, जिसे देखकर सम्पूर्ण प्रजा अपने को धन्य मानने लगती है। और इसका सम्पूर्ण श्रेय महारानी चेलना को देते हुए आपस में उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। तभी राजा श्रेणिक भी खड़े होकर घोषणा करते हैं।)

श्रेणिक– धर्मप्रेमी समाज ! आज में नई बात विज्ञापित करता हूँ। आप सभी जानते हो कि मैं अभी तक एकान्तमत का अनुयायी था, परन्तु अब मुझको महारानी चेलना के प्रताप से सत्य वस्तु स्वरूप की पहचान हुई है और परम-पावन जैनधर्म की प्राप्ति हुई है। श्री जिनेन्द्र भगवान का शासन ही इस संसार में शरणभूत है। अभी तक अज्ञान में मैंने ऐसे पवित्र जैनधर्म का अनादर किया, उसका मुझको बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। अब मैंने एकान्तधर्म छोड़कर जैनधर्म को स्वीकार किया है। और सर्वज्ञ भगवान ही मेरे इष्टदेव हैं। और वीतरागी निर्ग्रंथ मुनिराज ही मेरे गुरु हैं। अब से राजधर्म भी जैनधर्म ही रहेगा और राजमहल के ऊपर जैनधर्म का ही झंडा फहरायेगा। (झंडा हाथ में लेकर ऊँचा करते है; पुष्पवृष्टि होती है, बाजे बजते हैं।)

सभाजन– धन्य हो ! धन्य हो महाराज !! आप धन्य हो !!! (एकसाथ हर्षनाद)

चेलना– (खड़ी होकर) धर्मप्रेमी बन्धुओ ! महाराज ने जैनधर्म के स्वीकारने की सूचना दी है। उससे मुझको अपार हर्ष हो रहा है । इस जगत में कल्याणकारी एक जैनधर्म ही है। इस घोर संसार में सज्जनों को शरणभूत एकमात्र यह जैनधर्म ही है। हे भव्यजीवो ! यदि आप इस भव-भ्रमण के दु:ख से थक चुके हो और आत्मा की मोक्षदशा प्रकट करना चाहते हो तो इस सर्वज्ञ प्रणीत जैनधर्म की शरण में आओ।

दीवानजी– (खड़े होकर) महाराज और महारानीजी ने इस जैनधर्म सम्बन्धी जो सूचना दी है, उससे मुझको अत्यन्त आनन्द हो रहा है। अब इस संसार-समुद्र से छूटने के लिए मैं भी अत्यन्त उल्लास पूर्वक जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ। अपने महाराज ने अनेक प्रकार से परीक्षा करके जैनधर्म को स्वीकार किया है, इसलिए समस्त प्रजाजन

भी स्वयं आत्महित के लिए इस जैनधर्म को स्वीकार करो। ऐसी मेरी अन्तःकरण की भावना है।

सैनिक– (हाथ जोड़कर) महाराज ! मैं जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ।

सैनिक– (हाथ जोड़कर) मैं भी जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ।

(एकान्ती गुरु आते हैं।)

एकान्ती– (हाथ जोड़कर, गद्गद भाव से) महाराज ! हमको क्षमा करो। हमने अभी तक दंभ करके आपको ठगा। अरे रे ! पवित्र जैनधर्म की निंदा करके हमने घोर पाप का बंध किया। राजन् ! अब हमें हमारे पापों का पश्चात्ताप हो रहा है। हमारे पापों को क्षमा करो। हमारा उद्धार करो। अब हम जैनधर्म की शरण लेते हैं।

(श्रेणिक राजा चेलना के सामने देखते हैं।)

चेलना– महाराज ! अब आपको इस सत्य की सच्ची पहिचान हुई है, यह आपका सद्भाग्य है। जैनधर्म तो पावन है। इसकी शरण में आये पापी प्राणियों का भी उद्धार हो जाता है।

एकान्ती– (हाथ जोड़कर) देवी ! हमारे अपराध को क्षमा करो। हम भ्रम में थे। आपने ही हमारा उद्धार किया है। कुमार्ग से छुड़ाकर आपने ही हमको सच्चे मार्ग में स्थापित किया है। माता ! आपका उपकार हम कभी नहीं भूलेंगे।

(मंच पर नगरसेठ आता है।)

दीवानजी– लो, ये नगरसेठ भी पधार गये।

श्रेणिक– पधारो नगरसेठ ! पधारो !

नगरसेठ– महाराज ! मैं एक मंगल बधाई देने आया हूँ। चेलना माता के प्रताप से आपने जैनधर्म अंगीकार किया– इस समाचार से सम्पूर्ण नगरी में आनन्द फैल गया है, सम्पूर्ण नगरी जैनधर्म के जयकारे

से गुंजायमान हो रही है। महाराज ! मुझको यह बताते हुए बहुत आनन्द हो रहा है कि सम्पूर्ण नगरी के समस्त प्रजाजन जैनधर्म अंगीकार करने को तैयार हो गए हैं। आज से मैं और समस्त प्रजाजन जैनधर्म को स्वीकार करते हैं।

चेलना– अहो ! धन्य है, एक-एक प्रजाजन धन्य है।

नगरसेठ– महाराज ! दूसरी बात यह है कि समस्त प्रजाजनों को महापवित्र जैनधर्म की प्राप्ति चेलना माता के प्रताप से ही हुई है। इसलिए उनका सम्मान करते हैं और उन्हें समस्त प्रजा की धर्ममाता के रूप में स्वीकार करते हैं।

(हर्षनाद)

श्रेणिक– बराबर है सेठजी ! मुझको और समस्त प्रजा को महारानी के प्रताप से ही जैनधर्म की प्राप्ति हुई है। आपने उनका सम्मान किया है। वह योग्य ही है।

(दूर से या परदे से वाद्ययंत्रों का नाद।)

(सामने से श्रीमाली प्रवेश करता है।)

माली– बधाई, महाराज बधाई !

महाराज ! सबको आनन्द उत्पन्न हो, ऐसी बधाई लाया हूँ।

त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव भगवान श्री महावीर परमात्मा का समवशरण सहित अपनी नगरी के उद्यान में पर्दापण हुआ।

(श्रेणिक सहित सब खड़े हो जाते हैं।)

श्रेणिक– अहो! भगवान पधारे!! धन्य घड़ी! धन्य भाग्य! नमस्कार हो त्रिलोकीनाथ भगवान को !!

(जरा-सा चलकर) नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !!!

चेलना– अहो, धन्य अवतार ! साक्षात् भगवान मेरे आँगन में पधारे। मेरे हृदय के हार पधारे। हृदय के हार आओ ! त्रिलोकीनाथ पधारो ! सेवक को पावन करके भव से पार उतारो।

अभय– अहो, मेरे नाथ पधारे! मुझको इस संसार समुद्र से छुड़ाकर मोक्ष में ले जाने के लिए मेरे नाथ पधारे।

चेलना– चलो महाराज ! हम भगवान के दर्शन करने चलें, और भगवान का दिव्य उपदेश प्राप्त कर पावन होवें।

श्रेणिक– हाँ देवी चलो ! सम्पूर्ण नगरी में मंगल भेरी बजवाओ कि सब जन भगवान के दर्शन करने के लिए आयें। लो माली ! यह आपको बधाई का इनाम।

(राजा गले में से हार आदि निकालकर देते हैं। और तत्काल ही समस्त प्रजाजनों के साथ बड़े ही धूमधाम से हाथ में पूजा की थाली लेकर प्रभु दर्शन को चले जाते हैं।)

चलो चलो, सब हिल-मिल कर आज,
महावीर वंदन को जावें।
चलो चलो, सब हिल-मिल कर आज,
प्रभुजी के वंदन को जावें।
गाजे-गाजे जिनधर्म की जयकार,
वैभारगिरि पर जावें।

(गाते-गाते जाते हैं और परदे के पीछे जाकर फिर आते हैं।

रास्ते में दूसरे अनेक मनुष्य साथ में मिल जाते हैं। (परदा ऊँचा होता है और भगवान दिखते हैं।)

श्रेणिक– बोलिये, महावीर भगवान की जय !

(सब वंदन करके बैठते हैं। स्तुति करते हैं।)

मंगल स्वरूपी देव उत्तम हम शरण्य जिनेश जी।
तुम अधमतारण अधम मम लखि मेट जन्म कलेश जी।।
संसृतिभ्रमण से थकित लखि निजदास की सुन लीजिये।
सम्यक् दरश वर ज्ञान चारित पथविहारी कीजिये।।

चेलना– ॐ ह्रीं भगवान श्री वर्धमान जिनेन्द्रदेवचरणकमलपूजनार्थे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(थोड़ी देर के लिए एकदम शान्ति छा जाती है।)

श्रेणिक– (खड़े होकर) हे प्रभो ! आत्मा की मुक्ति का मार्ग क्या है ? कृपया हमें बताकर कृतार्थ करें।

(परदे में से दिव्यध्वनि की आवाज आती है।)

ओ......म्.......!!

द्रव्य-गुण-पर्याय से जो जानते अरहंत को।
वे जानते निज आत्मा द्रगमोह उनका नाश हो।।

अहो जीवो ! द्रव्य से, गुण से और पर्याय से अरिहंत भगवान के स्वरूप को जो जीव जानता है वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप जानता है और उसका दर्शन-मोह जरूर क्षय को प्राप्त होता है।

हे जीवो ! आपका आत्मा भी अरिहंत भगवान जैसा ही है। जैसा अरिहंत भगवान का स्वभाव है वैसा ही तुम्हारा स्वभाव है। उस स्वभाव सामर्थ्य को आप पहचानो, उसकी प्रतीति करो। यह ही मुक्ति का मार्ग है। समस्त अरिहंत भगवंतों ने ऐसे ही मार्ग को अपनाकर मुक्ति प्राप्त की है और जगत को भी ऐसा ही मुक्ति के मार्ग का उपदेश दिया है।

हे जीवो ! आप भी पुरुषार्थ से इस मार्ग को अपनाओ।

श्रेणिक– अहो, प्रभो ! आपका दिव्य उपदेश सुनकर हम पावन हो गये हैं, हमारा जीवन धन्य हुआ ।

अभय– प्रभो ! इस संसार-समुद्र से मेरी मुक्ति कब होगी ?

दिव्यध्वनि– (परदे में से) हे भव्य ! आप अत्यन्त निकट भव्य हो, इस भव में ही आपकी मुक्ति होगी।

अभय– प्रभो ! मेरे पिताजी को मुक्ति कब होगी ?

दिव्यध्वनि– (परदे में से) श्रेणिक महाराज को क्षायिक सम्यक्त्व हुआ है। उन्होंने अभी तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया है। एक भव बाद ये तीर्थंकर होकर मोक्ष पधारेंगे।

चेलना– अहो ! धन्य-धन्य !!

(सब खड़े होकर चले जाते हैं। परदा बन्द होता है।)

सप्तम् दृश्य

महारानी चेलना और अभयकुमार का वैराग्य

(महाराज श्रेणिक बैठे हैं, वहाँ अभयकुमार आता है।)

अभय– पिताजी ! भगवान् की दिव्यध्वनि में जब से मैंने यह सुना है कि मैं इसी भव का मोक्षगामी हूँ, तभी से मेरा मन इस संसार से उठ गया है। मैं अब यह संसार स्वप्न में भी देखूँगा नहीं, बाहर के भाव तो अनंत बार किये। अब मेरा परिणमन अन्दर ढलता है। अब तो मैं मुनि होकर आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का भोग करूँगा। पिताजी ! मुझे स्वीकृति प्रदान करो।

श्रेणिक– अरे कुमार ! ऐसी छोटी उम्र में क्या तुम दीक्षा लोगे? तुम्हारे बिना इस राज्य का कार्यभार व वैभव कौन सँभालेगा? बेटा ! अभी तो मेरे साथ राज्य भोगो, बाद में दीक्षा लेना।

अभय– नहीं-नहीं, पिताजी ! चैतन्य के आनन्द के सिवाय अब और कहीं मेरा मन एक क्षण भी नहीं लगता। अब तो मैं एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना आज ही चारित्र दशा को अंगीकार करूँगा।

श्रेणिक– अहो, पुत्र ! धन्य है तेरे वैराग्य को और दृढ़ता को। पुत्र ! तेरे वैराग्य को मैं नहीं रोक सकता। तेरी चेलना माता स्वीकृति दे तो खुशी से जाओ और आत्मा का पूर्ण हित करो।

(अब अभयकुमार माता चेलना के पास जाता है। चेलना देवी स्वाध्याय कर रही हैं।)

मिथ्यात्व आदिक भाव तो चिरकाल से भाये अरे।
सम्यक्त्व-आदिक भाव पर क्षण भी कभी भाये नहीं।।

अहो, रत्नत्रय की आराधना करके मैं इस भव-समुद्र से छूटूँ —ऐसा धन्य अवसर कब आयेगा?

अभय– माता ! आप जैसी आत्महित की मार्गदर्शक माता मुझको मिली— यह मेरा धन्य भाग्य है। हे माता ! तुम मेरी अन्तिम माता हो। अब इस संसार में मैं दूसरी माता बनाने वाला नहीं हूँ। संसार में डूबे हुए इस आत्मा का अब उद्धार करना है। हे माता ! आज ही चारित्रदशा अंगीकार करके मैं समस्त मोह का नाश करूँगा और केवलज्ञान प्रगट करूँगा। इसलिए हे माता ! मुझको आज्ञा प्रदान करो।

चेलना– अहो पुत्र ! धन्य है तेरी भावना को !! जाओ पुत्र, खुशी से जाओ और पवित्र रत्नत्रय धर्म की आराधना करके अप्रतिहतरूप से केवलज्ञान प्राप्त करो। पुत्र ! मैं भी तेरे साथ में ही दीक्षा लूँगी। अब इस भवभ्रमण से बस हो, अब तो इस स्त्री पर्याय को छेदकर मैं भी अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करूँगी।

अभय– अहो माता ! आपके वैराग्य को धन्य है। चलो, दीक्षा लेने के लिए भगवान के समवशरण में चलें।

(दोनों गाते-गाते भावना करते हैं।)

चलो आज श्री वीर जिनचरण में
बनकर संयमी रहेंगे निज ध्यान में।
राजगृही नगरी में श्रीजिन विराजे
समवशरण मध्य जिनराज शोभते
चलो आज श्री वीर जिनचरण में
ॐध्वनि सुनेंगे श्री वीरप्रभु की
रहेंगे मुनिवरों के पावन चरण में
चलो आज श्री वीर जिनचरण में
छोड़ के परसंग आज दीक्षा धरेंगे
राजपाट छोड़ि के संग वीर रहेंगे
वन जंगल में हम विचरण करेंगे
चलो आज श्री वीर जिनचरण में

(गाते-गाते दोनों चले जाते हैं। परदा बन्द होता है।)

सूत्रधार– (परदे में से) आप सभी इस नाटक द्वारा जैनधर्म की प्रभावना का आदर्श लें और...

भारत के घर-घर चेलना जैसी आदर्श माता बनें।
घर-घर अभयकुमार जैसा वैरागी बालक बनें।
घर-घर जैनधर्म का प्रभाव फैले।
जैनशासन सर्वत्र जयवंत वर्ते।

बोलो, श्री महावीर भगवान की जय।
बोलो, जैनधर्म प्रभावक सर्व सन्तों की जय।
बोलो, जैन धर्म की जय।

।।इति।।

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावै।
बैर-भाव अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावै।।

३

ज्ञानबर्द्धक पहेलियों व प्रश्नों के उत्तर

जैनधर्म की कहानियाँ भाग-११ में प्रकाशित पहेलियों व प्रश्नों के उत्तर इसप्रकार हैं–

१. आत्मा/चेतना/ज्ञान
२. सम्यग्दर्शन
३. परमात्मा, परमाणु
४. अरहंतप्रभु ५. सिद्धप्रभु
६. विपुलाचल पर्वत ७. उपाध्याय
८. साधु ९. केवलज्ञान १०. गणधरदेव
११. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र
१२. कैलाशपर्वत और आदिनाथ
१३. अरहंत १४. सीमंधर भगवान
१५. सिद्ध १६. कानजीस्वामी
१७. रत्नत्रय
१८. (I) पंचमगति (II) पंचमगति (III) मनुष्यगति (IV) देवगति (V) देवगति (VI) देवगति (VII) पंचमगति (VIII) पंचमगति (IX) नरकगति (X) देवगति (XI) पंचमगति (XII) पंचमगति (XIII) मनुष्यगति।
१९. महावीर स्वामी २०. आत्मा
२१. अंत में देखें।
२२. (I) मोक्षतत्व, जीवतत्त्व (II) संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, जीवतत्त्व (III) आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, जीवतत्त्व (IV) आस्रवतत्त्व, बंधतत्त्व, जीवतत्त्व (V) अजीव तत्त्व।
२३. अयोध्या, सम्मेद शिखर
२४. (I) गलत (II) सही
२५. दो व चार २६. दशरथ
२७. एक ज्ञानवाला
२८. अविरत सम्यक्त्व, सयोगकेवली
२९. (I) एक (II) एक समय
३०. मोक्ष में, देवगति में, देवगति में, तिर्यंचगति,
३१. सिद्धजीव
३२. वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ व महावीर। पंचबालयति
३३. हममें १० और भगवान में ८
३४. (I) चौथे गुणस्थान में (II) चौथे गुणस्थान में (III) मिथ्यात्व गुणस्थान में (IV) बारहवें गुणस्थान में (V) तेरहवें गुणस्थान में
३५. (I) म (II) वि (III) न (IV) अ (V) क्ष
३६. जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष
३७. (I) एक मनुष्य के आत्मा में बहुत ज्ञान है।

(II) जीव का लक्षण ज्ञान है।
(III) सुख-दु:ख आत्मा को होता है।

३८. (I) दादा-पोता (II) बैन-बैन (III) मां-बेटा (IV) भाई-भाई (V) चचेरे भाई (VI) ससुर-दामाद (VII) पिता-पुत्र (VIII) जीजा-साले (IX) तीर्थंकर-गणधर (X) पुत्र-पिता

३९. **जीव में** - ज्ञान, सुख, दु:ख, राग, अस्तित्वगुण, विचार **अजीव में** - रोग, शरीर, शब्द, अस्तित्वगुण, रंग ।

४०. (I) अभिन्न

४१. (II) भक्त

४२. (I) दो (II) तीन
(III) चार मनुष्य गति में,
सिद्धपरमेष्ठी मोक्षगति में

४३. (I) प्रवचनसार (II) छहढाला (III) मोक्षशास्त्र (IV) समयसार (V) अष्टपाहुड़ (VI) पंचास्तिकाय (VII) परमात्म प्रकाश (VIII) षट्खण्डागम

४४. बाहुबली, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, सुधर्माचार्य, मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ, वृषभसेन, कुंदकुंद, विमलनाथ, ऋषभदेव, भरत चक्रवर्ती, चंद्रप्रभ, अजितनाथ, समंतभद्र, अरनाथ, धर्मनाथ, मल्लिनाथ, नमिनाथ, अजितनाथ, सुमतिनाथ, अभिनंदननाथ, श्रेयांसनाथ, पार्श्वनाथ, अनंतनाथ, शान्तिनाथ, वीरसेन, पूज्यपाद ।

४५.
पाँचों ज्ञानों में से एक ज्ञान होगा एवं एक समय में मोक्ष जाएगा ।

पहेली नं. २१ का उत्तर

(१) दीपावली पर्व,
(२) ज्ञान,
(३) सम्यग्दर्शन,
(४) सिद्ध भगवान,
(५) पाँच पाण्डव मुनि,
(६) नियमसार,
(७) समवशरण,
(८) इन्द्रभूति,
(९) रत्नत्रय,
(१०) महावीर भगवान।

(३) महावीर प्रभु का मोक्ष
(४) आत्मा का स्वभाव
(६) मोक्ष का मूल
(८) शरीर बिना सुन्दर वस्तु
(१) शंत्रुजय सिद्धक्षेत्र
(२) समयसार का भाई
(७) धर्मराजा का दरबार
(९) गौतम स्वामी का नाम
(१०) मोक्ष में जाने का विमान
(५) सिंह के भव में आत्मज्ञान